CHRONICLE
Nurturing Talent Since 1990

मध्यकालीन भारत

वैकल्पिक इतिहास

भाग -2

यूजीसी नेट/जेआरएफ, राजस्थान 1st ग्रेड व 2nd ग्रेड
सीयूईटी पीजी, टीजीटी/पीजीटी तथा
राज्य स्तरीय प्रवक्ता/अध्यापक भर्ती परीक्षाओं एवं
संघ व राज्य लोक सेवा आयोग की प्रारंभिक व मुख्य परीक्षा के लिए उपयोगी

मध्यकालीन भारत

वैकल्पिक इतिहास

भाग–2

यूजीसी नेट/जेआरएफ, राजस्थान 1st ग्रेड व 2nd ग्रेड
सीयूईटी पीजी, टीजीटी/पीजीटी तथा राज्य स्तरीय प्रवक्ता/अध्यापक भर्ती परीक्षाओं
एवं संघ व राज्य लोक सेवा आयोग की प्रारंभिक व मुख्य परीक्षा तथा
विश्वविद्यालय स्तर के परीक्षाओं के लिए उपयोगी

संपादक
एन. एन. ओझा
लेखन एवं प्रस्तुति
क्रॉनिकल संपादकीय समूह

CHRONICLE
Nurturing Talent Since 1990

पुस्तक के संबंध में

यह पुस्तक यूजीसी नेट/जेआरएफ, राजस्थान 1st ग्रेड व 2nd ग्रेड सीयूईटी पीजी, टीजीटी/पीजीटी तथा राज्य स्तरीय प्रवक्ता/अध्यापक भर्ती परीक्षाओं एवं संघ व राज्य लोक सेवा आयोग द्वारा आयोजित प्रारंभिक व मुख्य परीक्षा तथा विश्वविद्यालय स्तर के परीक्षाओं की तैयारी करने वाले अभ्यर्थियों को ध्यान में रखकर तैयार किया गया है।

पुस्तक में मध्यकालीन भारत के संपूर्ण ऐतिहासिक घटनाओं को प्रतियोगी एवं प्रवेश परीक्षाओं के पाठ्यक्रम पर आधारित सामग्री को समाहित किया गया है। पुस्तक की रूपरेखा तैयार करते समय हमारा उद्देश्य बहुआयामी रहा है। यह मध्यकालीन भारत का इतिहास के सभी पक्षों पर समग्र रूप से प्रकाश डालती।

वर्तमान में प्रतियोगी परीक्षाओं के बदलते पैटर्न को ध्यान में रखते हुए पुस्तक को तथ्यात्मक और संकल्पनात्मक दोनों दृष्टिकोण से तैयार किया गया है। यह उन प्रतियोगियों के लिए भी लाभकारी साबित होगा जो न तो इतिहास के विद्यार्थी रहे हैं और न ही इतिहास का उन्होंने पहले कभी अध्ययन किया है।

इस पुस्तक का लेखन और विषय वस्तु इस दृष्टिकोण से तैयार की गई है कि इस पुस्तक का अध्ययन करके भविष्य में आयोजित होने वाली परीक्षाओं में पूछे जाने वाले प्रश्नों के उत्तर सहजता से दिये जा सकें।

पुस्तक को त्रुटिहीन रूप में प्रस्तुत करने का यथासम्भव प्रयास किया गया है, परन्तु इतिहास से संबंधित सभी तथ्यों को पूर्णत: सत्यापित नहीं किया जा सकता, क्योंकि काल एवं परिस्थिति के अनुसार लेखक के अपने-अपने विचार होते हैं, अत: पुस्तक में सर्वमान्य तथ्यों एवं विचारों को ही समाहित किया गया है।

फिर भी यदि इस पुस्तक में किसी प्रकार की त्रुटि होती है तो हम उसके लिए क्षमाप्रार्थी हैं। साथ ही आपसे आग्रह है कि त्रुटियों के संबध में हमें अवगत कराएं, ताकि हम आगामी अंक में उनमें सुधार कर सकें।

इस पुस्तक के लेखन में निम्न महत्वपूर्ण पुस्तकों तथा इग्नू, एनसीईआरटी व अन्य राज्य बोर्डों द्वारा प्रकाशित पुस्तकों के सामग्रियों का संकलन परीक्षोपयोगी दृष्टिकोण से किया गया है।

- इरफान हबीब - ***मुगल भारत की कृषि प्रणाली***
- इर्विन - ***पाश्चात्य मुगल 2 vols.***
- जे.एस. सलेकर - ***मुगल साम्राज्य का पतन***
- जी.एस. सरदेसाई - ***मराठों का नवीन इतिहास vols.-II***
- ग्रैंड डफ - ***मराठों का इतिहास 2 vols.***
- आर.सी. मजूमदार - ***दि मराठा सुप्रीमेसी***
- आर.सी. दत्त - ***भारत का आर्थिक इतिहास vols.-I***
- पी.के. खेड़ा - ***अंग्रेजों की सिंध नीति***
- ए.सी. बनर्जी - ***आंग्ल-सिख सम्बन्ध***
- गोपाल सिंह - ***भारत में ब्रिटिश नीति***
- कामेश्वर प्रसाद - ***भारत का इतिहास 1757 से 1950 ई. तक***

आशा है कि यह पुस्तक अपने नवीनतम स्वरूप में आपके लिए अत्यंत उपयोगी साबित होगी।

–संपादक

अनुक्रमणिका

मध्यकालीन भारत

1. प्रारंभिक मध्यकालीन भारत के प्रमुख राजवंश..... 219 – 242

- **मध्यकालीन भारत..... 219**
  - ऐतिहासिक स्त्रोत 221
  - राजपूतों की उत्पत्ति..... 221
  - 1 विदेशी इतिहासकारों का मत..... 221
  - 2 भारतीय इतिहासकारों का मत 222
- **गुर्जर-प्रतिहार वंश..... 222**
  - ऐतिहासिक स्रोत..... 222
  - गुर्जर- प्रतिहार के उत्पति 223
  - 1. विदेशी इतिहासकारों का मत 223
  - भारतीय इतिहासकारों का मत..... 223
  - गुर्जर प्रतिहार वंश के प्रमुख शासक..... 223
  - प्रतिहार साम्राज्य का पतन 224
- **गहड़वाल राजवंश..... 224**
  - गहड़वाल इतिहास के स्रोत 224
  - राजनैतिक इतिहास..... 224
- **शाकम्भरी का चहमान वंश..... 225**
  - राजनैतिक इतिहास..... 225
- **मालवा का परमार राजवंश..... 226**
  - ऐतिहासिक स्रोत..... 226
  - राजनैतिक इतिहास..... 227
- **जेजाकभुक्ति के चन्देल..... 228**
  - ऐतिहासिक स्रोत..... 228
  - राजनैतिक इतिहास..... 228
  - स्थापत्य कला..... 229
- **त्रिपुरी का कलचुरि-चेदि राजवंश..... 229**
  - ऐतिहासिक स्रोत..... 229
  - राजनैतिक इतिहास..... 230
- **गुजरात का चालुक्य अथवा सोलंकी वंश..... 230**
  - ऐतिहासिक स्रोत..... 230
  - राजनैतिक इतिहास..... 230
- **राष्ट्रकूट वंश..... 231**
  - ऐतिहासिक स्रोत..... 231
- **विभिन्न राष्ट्रकूट शाखाएं..... 232**
  - मान्यखेत का राष्ट्रकूट वंश..... 232
  - कृष्ण प्रथम (758-773 ई.)..... 232
  - गोविन्द द्वितीय (773-780 ई.)..... 233
  - ध्रुव 'धारवर्ष' (780-793 ई.)..... 233
  - गोविन्द तृतीय (793-814 ई.)..... 233
  - अमोघवर्ष (814-878 ई.)..... 233
  - कृष्ण द्वितीय (878-914 ई.)..... 234
  - इन्द्र तृतीय (914-929 ई.)..... 234
  - कृष्ण तृतीय (939-968 ई.)..... 234
  - खोट्टिग (968-972 ई.)..... 234
  - कर्क द्वितीय (972 ई.-974 ई.)..... 234
  - प्रशासन..... 234
  - राजा..... 234
  - मन्त्री..... 235
  - राज्य..... 235
  - सीधे प्रशासित क्षेत्र..... 235
  - सेना..... 235
  - राजस्व के स्रोत..... 235
  - धार्मिक स्थिति..... 235
  - साहित्य..... 236
  - कला..... 236
  - एलोरा का कैलाश मंदिर..... 236
- **बंगाल का पाल वंश..... 237**
- **शाही वंश..... 238**
- **उड़ीसा..... 239**
- **कश्मीर..... 239**
  - कल्हन की राजतंरगिणी..... 239
- **कच्छपघट..... 239**
- **इस्लाम का उदय..... 240**
- **भारत-अरब संबंध..... 240**
  - सिंध पर अरबों के आक्रमण..... 241
  - सिंध विजय का भारत पर प्रभाव..... 242
- **भारत का अरबों पर प्रभाव..... 242**

2. 750 से 1200 ई. के मध्य की सांस्कृतिक प्रवृत्तियां ..... 243 – 259

- **सामंतवाद : उद्भव तथा विकास..... 243**
  - सामन्तवाद के विकास में सामाजिक-आर्थिक कारक... 243
  - सामन्तवाद का प्रभाव 245
- **कृषक एवं राजनैतिक संरचनाएं..... 246**
- **अर्थव्यवस्था..... 247**
  - उत्तर भारत की आर्थिक संरचना..... 247
  - दक्षिण भारत की आर्थिक संरचना 248
  - उद्योग..... 249
- **राजनीतिक संरचना..... 249**
- **मंदिरों तथा मठ संस्थाओं का महत्व एवं प्रभाव व मंदिर कला..... 250**

❖ मन्दिरा कला 251
❖ स्थापत्य कला 251
❖ चित्रकला 252

➲ **सामाजिक गतिशीलता की सीमा 253**
❖ सामाजिक स्थिति 253

➲ **अल्बेरूनी के काल का 'भारत' 256**

➲ **शंकराचार्य 257**

➲ **विभिन्न साहित्य 258**
❖ दार्शनिक साहित्य 258

3. द. भारत के राजवंश (750.1200 ई.) .....260 – 280

➲ **चोल राजवंश 260**
❖ ऐतिहासिक स्रोत 260
❖ अभिलेख 261
❖ राजनीतिक इतिहास 261
❖ आदित्य प्रथम (871-907 ई.) 261
❖ परांतक प्रथम (907-955 ई.) 261
❖ राजराज प्रथम (985-1014 ई.)- 262
❖ राजेन्द्र प्रथम (1014-44 ई.) 263
❖ राजाधिराज प्रथम (1044-52 ई.)- 263
❖ राजेन्द्र द्वितीय (1052-64 ई.) 264
❖ वीर राजेन्द्र (1064-70 ई.) 264
❖ अधिराजेन्द्र (1070 ई.)- 264
❖ कुलोतुंग प्रथम (1070-1120 ई.)- 264
❖ विक्रम चोल (1120-35 ई.) 265
❖ कुलोतुंग द्वितीय (1133-50 ई.) 265
❖ राजराज द्वितीय (1150-73 ई.) 266
❖ कुलोतुंग तृतीय (1178-1216 ई.)- 266
❖ राजराज तृतीय 266
❖ राजेन्द्र तृतीय 266

➲ **चोल प्रशासन 266**
❖ राजस्व प्रशासन 267
❖ सैन्य संगठन 268
❖ न्याय व्यवस्था 268
❖ नाडू की भूमिका 268
❖ स्थानीय स्वशासन 269
❖ परान्तक प्रथम का उत्तर मेरूर अभिलेख 269
❖ उर 269
❖ ग्राम सभा 269
❖ ग्राम सभाओं की लोकतान्त्रिक भूमिका 270

➲ **चोलकालीन धार्मिक दशा 270**
❖ भारतीय संस्कृति का भारत से बाहर प्रसार में योगदान 271

➲ **चोलकालीन साहित्य 271**

➲ **कला एवं स्थापत्य 272**

➲ **आर्थिक स्थिति 273**

➲ **मंदिरों की भूमिका 275**

➲ **सामाजिक स्थिति 275**

➲ **अन्य राजवंश 276**

➲ **पाण्ड्य राजवंश 278**
1. संगमकालीन पाण्ड्य राज्य 278
2. प्रथम पाण्ड्य साम्राज्य 278
❖ द्वितीय पाण्ड्य साम्राज्य 279

4. तुर्कों का आगमन ..... 281 – 286

➲ **महमूद गजनवी 282**
❖ महमूद के आक्रमण के उद्देश्य 283
❖ गजनवी आक्रमण के समय भारत की राजनीतिक सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्थाएं 283
❖ राजनीतिक व्यवस्था 283
❖ आर्थिक व्यवस्था 283
❖ सामाजिक संगठन 284
❖ धार्मिक स्थिति 284

➲ **मोहम्मद गोरी का आक्रमण 284**

➲ **तुर्कों की सफलता और राजपूतों की पराजय के कारण. 285**
❖ राजनीतिक कारण 285
❖ सैनिक कारण 285
❖ समाजिक-सांस्कृतिक कारण 285

5. गुलाम शासकों के अंतर्गत दिल्ली सल्तनत ..... 287 – 296

➲ **गुलाम वंश 288**
❖ मामलूक वंश (1206-1290ई.) 288
❖ कुतुबुद्दीन ऐबक (1206-10 ई.) 288
❖ आरामशाह (1210 ई.) 289
❖ शम्सुद्दीन इल्तुतमिश (1210-1236 ई.) 289
❖ इल्तुतमिश का योगदान प्रसार एवं सुदृढीकरण 289
❖ चालीस अमीरों का दल (तुर्कान-ए-चहलगानी) 291
❖ रुकनुद्दीन फिरोजशाह (1236 ई.) 291
❖ रजिया (1236-40 ई.) 291
❖ मुइजुद्दीन बहरामशाह (1240-42 ई.) 292
❖ अलाउद्दीन मसूदशाह (1242-1246 ई.) 293
❖ नासिरुद्दीन महमूद (1246-1265 ई.) 293
❖ बलबन (1265-86 ई.) 293
❖ राजत्व सिद्धांत 294
❖ न्याय व्यवस्था 295
❖ सैन्य व्यवस्था 295
❖ राजव्यवस्था 295
❖ आन्तरिक विद्रोह (रक्त एवं लौह की नीति) 296

6. खिलजी वंश ..... 297 – 305

➲ **खिलजी क्रांति 297**
❖ जलालुद्दीन खिलजी (1290-96 ई.) 297
❖ अलाउद्दीन खिलजी (1296-1316 ई.) 298
❖ **दक्षिण की नीति 298**
❖ वारंगल अभियान (1309 ई.) 299
❖ द्वारसमुद्र अभियान (1310 ई.) 300
❖ मदुरा या मावर अभियान (1311 ई.) 300

❖ देवगिरि पर तीसरा आक्रमण (1312-13 ई.) 300
❖ अलाउद्दीन के राजनीतिक विचार (राजत्व सिद्धान्त) . 300
❖ प्रशासनिक सुधार..... 301
❖ पुलिस और गुप्तचर..... 301
❖ प्रांतीय प्रशासन..... 302
❖ सैनिक सुधार..... 302
❖ **राजस्व सुधार 302**
❖ अलाउद्दीन का बाजार विनियमन..... 303
❖ **मण्डी 303**
❖ **सराय-ए-अदल.....304**

➲ **कुतुबुद्दीन मुबारक खिलजी (1316-20 ई.)..... 305**

7. तुगलक, सैयद और लोदी वंश.....306 – 316

➲ **तुगलक वंश 306**
❖ गयासुद्दीन तुगलक (1320-25 ई.) 306
❖ ग्यासुद्दीन तुगलक द्वारा किया गया सुधार कार्य 306
❖ मुहम्मद बिन तुगलक (1325-51 ई.) 307
❖ मुहम्मद बिन तुगलक की योजनाएं..... 307
❖ राजधानी परिवर्तन..... 307
❖ सांकेतिक मुद्रा का प्रचलन..... 307
❖ खुरासान अभियान..... 308
❖ कराचिल अभियान..... 308
❖ दोआब में भू-राजस्व की वृद्धि..... 308
❖ मुहम्मद बिन तुगलक के समय में विद्रोह..... 308
❖ फिरोजशाह तुगलक (1351-1388 ई.) 309
❖ सैनिक अभियान..... 309
❖ फिरोजशाह के प्रशासनिक सुधार 309
❖ कृषि संबंधी सुधार 310
❖ उद्यान एवं कारखाने..... 310
❖ कल्याणकारी कार्य..... 310
❖ आरंभिक मरम्मत कार्य..... 311
❖ फिरोजशाह की धार्मिक नीति..... 311
❖ फिरोजशाह के उत्तराधिकारी 311

➲ **सुल्तान, खलीफा और अमीर 312**
➲ **तुगलक सुल्तानों की दक्षिण नीति..... 312**
➲ **तैमूर का आक्रमण..... 313**
➲ **सैयद वंश (1414-21 ई.) 314**
❖ खिज्र खां (1414-21 ई.) 314
❖ मुबारकशाह (1421-34 ई.) 314
❖ मुहम्मद शाह (1434-43 ई.) 314
❖ अलाउद्दीन शाह (1443-51 ई.)..... 314

➲ **लोदी वंश (1451-1526 ई.) 314**
❖ बहलोल लोदी (1451-1489 ई.)..... 314
❖ सिकंदर लोदी (1489-1517 ई.) 315
❖ इब्राहिम लोदी (1517-26 ई.) 315

➲ **लोदी राजत्व..... 315**

8. सल्तनतकालीन भारत की सामान्य दशा..... 317 – 338

➲ **दिल्ली सल्तनत की प्रकृति 317**
➲ **केंद्रीय प्रशासन 318**
➲ **इक्ता व्यवस्था तथा प्रांतीय प्रशासन..... 321**
➲ **सल्तनतकालीन अर्थव्यवस्था 324**
❖ नगरीय अर्थव्यवस्था (13वीं, 14वीं सदी)..... 324
❖ नगरीय अर्थव्यवस्था के कारक..... 325
❖ तकनीकी और दस्तकारी 325

➲ **कला एवं वास्तुकला..... 328**
❖ स्थापत्य कला..... 328
❖ गुलाम वंश कालीन स्थापत्य..... 329
❖ खिलजी कालीन स्थापत्य..... 329
❖ तुगलक कालीन स्थापत्य..... 330
❖ चित्रकला..... 331
❖ **संगीत.....332**
❖ साहित्य..... 332
❖ जियाउद्दीन बरनी (साहित्य में योगदान) 334

➲ **सल्तनतकालीन समाज..... 334**

9. विजयनगर साम्राज्य..... 339 – 350

➲ **संगम वंश..... 339**
➲ **सालुव वंश (1485-1506) 341**
➲ **तुलुव वंश (1505-1565).....341**
➲ **अराविडू राजवंश (1570-1649) 343**
➲ **अर्थव्यवस्था..... 344**
➲ **सामाजिक व्यवस्था 346**
➲ **राजतंत्र एवं प्रशासनिक व्यवस्था..... 347**
❖ राजस्व प्रशासन..... 348
❖ प्रांतीय प्रशासन..... 348

➲ **राक्षसी तंगड़ी का युद्ध..... 350**
➲ **मंदिरों की भूमिका 350**

10. बहमनी साम्राज्य..... 351 – 355

❖ **अलाउद्दीन हसन बहमनशाह (1347-1358).....351**
❖ **मुहम्मद I (1358-75).....351**
❖ **अलाउद्दीन मुजाहिद (1375-78) 351**
❖ **मुहम्मद II (1378-1397).....351**
❖ **ताजुद्दीन फिरोज (1397-1422).....351**
❖ **शिहाबुद्दीन अहमद I (1422-1436).....352**
❖ **अलाउद्दीन अहमद II (1436-58).....352**
❖ **हुमायूं (1458-61) 352**
❖ **निजामशाह (अहमद तृतीय, 1461-63).....352**
❖ शम्सुद्दीन III (1463-1482)..... 352
❖ **महमूद गवां का प्रशासकीय एवं सांस्कृतिक योगदान.....353**

➲ **अहमदनगर..... 354**
➲ **बीजापुर..... 354**
❖ **बीदर.....355**
❖ **गोलकुंडा.....355**

11. क्षेत्रीय राज्यों का उदय.....356-372

➲ **बंगाल 356**

➲ जौनपुर 358
➲ मालवा 359
➲ गुजरात 361
➲ कश्मीर 364
➲ राजपूताना 367
❖ प्रतापगढ़ के गुहिलोत 369
➲ अन्य राजपूत राज्य 369
➲ सिंध और मुल्तान 370
➲ खानदेश 370
➲ उड़ीसा 371
➲ सूर्यवंशी गजपति शासक 371

12. भक्ति एवं सूफी आंदोलन ..... 373 – 381
❖ भक्ति आंदोलन के उदय के कारण 373
❖ भक्तिकाल के इतिहास लेखन की विभिन्न प्रवृत्तियां ... 374
➲ उत्तर भारत के एकेश्वरवादी आंदोलन 374
➲ सूफी आंदोलन 377
➲ सूफी एवं भक्ति आंदोलन में सामाजिक सुधार 380
❖ हिंदू और मुसलमान रहस्यवादियों के धार्मिक सिद्धांतों की समानता एवं प्रभाव 380

13. शेरशाह के सुधार ..... 382 – 384
❖ प्रशासनिक सुधार 382
❖ शेरशाह का प्रशासन 382
❖ आर्थिक सुधार 383
❖ जनकल्याणकारी कार्य 383
❖ कला-संस्कृति 384

14. मुगल साम्राज्य (1526.1707 ई.) 385-412
➲ बाबर (1526-1530 ई.) 386
➲ हुमायूं (1530-1556 ई.) 388
➲ अकबर (1556-1605 ई.) 389
❖ पश्चिम भारत पर मुगल साम्राज्य का विस्तार 391
❖ पूर्वी भारत में मुगल साम्राज्य विस्तार 392
❖ अकबर की पश्मिोत्तर सीमांत नीति 396
❖ सुलहकुल नीति 396
❖ अकबर की सांस्कृतिक नीतियां 397
❖ स्थापत्य कला 397
❖ चित्रकला 397
❖ भाषा तथा साहित्य 397
❖ अकबर 397
❖ राजनैतिक एवं भौगोलिक एकीकरण 398
❖ आर्थिक एवं प्रशासनिक एकता 398
➲ जहांगीर (1605-27 ई.) 398
❖ दक्षिणी अभियान 399
❖ जहांगीर की प्रशासनिक नीतियां 400
❖ राजपूत नीति 400
❖ धार्मिक नीति 400
❖ जहांगीर के शासनकाल में नूरजहां की भूमिका 401
➲ शाहजहां (1627-1658 ई.) 401
❖ मध्य एशियाई नीति 403
❖ उत्तर-पश्चिम सीमा-नीति 403
❖ राजपूत नीति 403
❖ शाहजहां के काल में हुए विद्रोह 403
➲ औरंगजेब (1658-1707 ई.) 405
❖ राज्य-विस्तार 405
❖ दक्षिण-नीति 406

15. मुगलों का राजत्व सिद्धांत 413-437
➲ मुगल सेना व मनसबदारी प्रणाली 413
➲ मनसबदारी एवं जागीरदारी व्यवस्था 414
❖ मनसब एवं जागीर प्रथा की विफलता 416
➲ मुगल प्रशासन 417
❖ सम्राट अथवा बादशाह 417
➲ मुगलकाल के अन्य अधिकारी 423
❖ मुगलकालीन पदाधिकारी 424
➲ मुगल भू-राजस्व व्यवस्था 424
❖ मुगलकाल में प्रचलित भू-राजस्व निर्धारण प्रणालियां ... 426
➲ मुगलकालीन राजस्व अधिकारी 427
➲ मुगलों की धार्मिक नीति 427
❖ अकबर की धार्मिक नीति 428
❖ औरंगजेब की धार्मिक नीति 429
❖ विभिन्न धर्म के लोग जिनसे अकबर ने धार्मिक विचार विमर्श किए 430
❖ अकबर के काल की प्रमुख सामाजिक धार्मिक घटनाएं 430
➲ मुगल काल में सूफी आंदोलन 430
❖ दाराशिकोह की रचनाएं एवं विषय 431
❖ भारत में प्रमुख सूफी संप्रदाय 431
➲ मुगल काल में सांस्कृतिक विकास 431
❖ वास्तुकला 432
❖ चित्रकला 433
➲ साहित्य 434
➲ संगीत 435
➲ अकबर के काल के स्थापत्य 436
➲ शाहजहां के काल के स्थापत्य 436
➲ अकबर के काल के अनुवाद कार्य 436
➲ अकबर कालीन साहित्य 436
➲ जहांगीर के काल के साहित्य 436
➲ शाहजहां के काल के साहित्य 436
➲ औरंगजेब के काल की साहित्यिक रचनाएं 437
➲ अकबर द्वारा दी गयी उपाधि 437
➲ विज्ञान एवं तकनीकी विकास 437
❖ विभिन्न यूरोपीय प्रौद्योगिकी का भारतीय द्वारा उपयोग 437

16. मुगल काल में आर्थिक और सामाजिक जीवन व उत्तर मुगल एवं प्रान्तीय राज्य ..... 438 – 457
➲ जमींदार और ग्रामीण उच्च वर्ग 439

➲ परवर्ती मुगल सम्राट......442
➲ मुगल साम्राज्य का पतन......445
➲ उत्तर मुगलकालीन साहित्य, कला तथा समाज......449
➲ साहित्य......449
➲ कला......450
➲ समाज......450
➲ मुगलकाल के प्रमुख यूरोपीय यात्री......451
➲ उत्तर मुगलकाल में क्षेत्रीय राज्यों का उदय......453
➲ बंगाल......453
➲ अवध......455
➲ हैदराबाद......456

17. शिवाजी एवं मराठा शक्ति का अभ्युदय......458 – 469
❖ शिवाजी का प्रशासन......460
❖ अर्थव्यवस्था......462
➲ शिवाजी के उत्तराधिकारी......463
➲ मराठा-पेशवा......464
❖ बालाजी विश्वनाथ (1713-1720)......464
❖ बाजीराव प्रथम (1720-1740)......465
❖ बालाजी बाजीराव (1740-1761)......466
❖ माधवराव नारायण प्रथम (1761-1772)......467
❖ नारायण राव (1772-1773)......467
❖ माधवराव नारायण द्वितीय (1774-1795)......467
❖ पुरंदर की संधि (1776)......467
❖ सालबाई की संधि (1782)......467
❖ बसानि की संधि (1802)......468
❖ पेशवाओं के अंतर्गत मराठा प्रशासन......468

18. दक्षिण भारत के राजवंश......470 – 484
➲ बादामी के चालुक्य वंश......470
❖ चालुक्य के ऐतिहासिक स्रोत......470
❖ राजनीतिक इतिहास......470
❖ पुलकेशिन प्रथम......470
❖ कीर्तिवर्मन प्रथम......470
❖ मंगलेश......470
❖ पुलकेशिन द्वितीय......471
❖ विक्रमादित्य प्रथम......471
❖ विनयादित्य......471
❖ विजयादित्य......472
❖ विक्रमादित्य द्वितीय......472
❖ कीर्तिवर्मन द्वितीय......472
➲ कल्याणी के चालुक्य......472
❖ इतिहास के स्रोत......472
❖ चालुक्यों के इतिहास के स्रोत......472
❖ राजनीतिक इतिहास......472
❖ सत्याश्रय (997-1008 ई.)......473
❖ विक्रमादित्य पंचम (1008-1015 ई.)......473
❖ जयसिंह द्वितीय (1015-1043 ई.)......473
❖ सोमेश्वर प्रथम (1043-1068 ई.)......473
❖ सोमेश्वर द्वितीय (1068-1076)......473
❖ विक्रमादित्य चतुर्थ (1076-1126)......474
❖ सोमेश्वर तृतीय (1126-1138 ई.)......474
❖ जगदेकमल्ल (1138-1151 ई.)......474
❖ तैल तृतीय (1151-1156 ई.)......474
➲ वेंगी के पूर्वी चालुक्य......474
❖ विष्णुवर्धन......474
❖ जयसिंह प्रथम......475
❖ जयसिंह द्वितीय......475
❖ विजयादित्य प्रथम......475
❖ विष्णुवर्धन चतुर्थ......475
❖ विजयादित्य द्वितीय......475
❖ विजयादित्य तृतीय......475
❖ भीम प्रथम......475
❖ अन्य प्रमुख शासक......475
❖ बादामी चालुक्य के प्रशासन......476
❖ सम्राट या राजा......476
❖ ग्राम प्रशासन......477
❖ कर प्रणाली......477
➲ साहित्य, धर्म एवं स्थापत्य कला......477
❖ साहित्य......477
❖ धर्म......477
❖ कला और स्थापत्य......478
➲ कांची के पल्लव वंश......478
❖ ऐतिहासिक स्रोत......478
➲ राजनीतिक इतिहास......479
❖ सिंहविष्णु (576-600 ई.)......479
❖ महेन्द्र वर्मन प्रथम (600-630ई.)......479
❖ नरसिंहवर्मन प्रथम (630-668ई.)......479
❖ महेन्द्रवर्मन द्वितीय (668-670 ई.)......480
❖ परमेश्वरवर्मन प्रथम (670-680ई.)......480
❖ नरसिंहवर्मन द्वितीय (680-720ई.)......480
❖ परमेश्वरवर्मन द्वितीय (720-731 ई.)......480
❖ नंदिवर्मन द्वितीय (731-795 ई.)......480
❖ दंतिवर्मन (795-845 ई.)......480
❖ नंदिवर्मन तृतीय (844-866 ई.)......481
❖ नृपतुंगवर्मन (865-879ई.)......481
❖ अपराजित (879-897 ई.)......481
➲ प्रशासन......481
➲ सांस्कृतिक गतिविधियां......481
❖ धर्म......481
❖ साहित्य......482
➲ कला एवं स्थापत्य......482
❖ महेन्द्रवर्मन शैली (610-630 ई.)......482
❖ मामल्ल शैली (नरसिंहवर्मन) (630-668 ई.)......482
❖ राजसिंह शैली (674-800 ई.)......483
❖ नंदिवर्मन या अपराजित शैली (800-900 ई.)......483
❖ द. भारतीय मंदिर वास्तुकला शैली की प्रादेशिक भिन्नता....483

मध्यकालीन भारत

अध्याय 1

प्रारंभिक मध्यकालीन भारत के प्रमुख राजवंश

हर्षवर्धन की मृत्यु के पश्चात् से लेकर बारहवीं शताब्दी ईस्वी तक का काल उत्तर भारत के इतिहास में **'राजपूत काल'** के नाम से जाना जाता है। सातवीं-आठवीं शदी से हमें राजपूतों के उत्पति के ऐतिहासिक प्रमाण प्राप्त होने लगते हैं तथा बारहवीं शदी तक आते-आते उत्तर भारत में उनके **कुल 36 वंश** अत्यन्त प्रसिद्ध हो जाते हैं। **गुर्जर-प्रतिहार, राष्ट्रकूट, चालुक्य, चौहान, चंदेल, परमार, गहड़वाल** आदि सभी राजपूत वंश थे। राजपूत बड़े वीर तथा स्वाभिमानी होते थे, और साहस, त्याग, देशभक्ति आदि के गुण उनमें कूट-कूट कर भरे हुए थे।

परन्तु पारस्परिक संघर्ष तथा द्वेष-भाव के कारण वे देश की रक्षा नहीं कर सके, और देश की स्वाधीनता को उन्होंने विदेशियों के हाथों सौंप दिया।

ऐतिहासिक स्रोत

राजपूतों के इतिहास को जानने के लिए सबसे महत्वपूर्ण स्रोत हैं

अभिलेख: निस्संदेह अभिलेख साहित्यिक रचनाओं से अधिक विश्वसनीय स्रोत प्रमाणित होते हैं। फिर भी प्रशस्ति रूप (ग्वालियर प्रशस्ति, ऐहोल अभिलेख आदि) में होने के कारण इनमें उल्लिखित सभी बातों को अक्षरश: स्वीकार नहीं किया जा सकता। ऐसी परिस्थितियों में दूसरे राजवंशों के, विशेषकर उनके प्रतिद्वंद्वियों के अभिलेखों में पाये गये वर्णनों को भी जांचना आवश्यक है।

साहित्यिक रचनाएं: साहित्यिक ग्रन्थों में **नयचंद्रसूरि** का **हम्मीर महाकाव्य, पद्मगुप्त** द्वारा लिखित **'नवसहसांकचरित' हलायुध** का 'पिंगलसूत्रवृत्ति' मुख्य हैं। इनके अतिरिक्त, 'कुमारपाल चरित', 'वर्णरत्नाकर', **'पृथ्वीराजरासो'** आदि कृतियां राजपूतों का इतिहास जानने में सहायक हैं।

राजपूतों की उत्पत्ति

ऐसा माना जाता है कि राजपूत शब्द एक जाति या वर्ण विशेष के लिए देश में मुसलमानों के आने के बाद प्रचलित हुआ। ऐतिहासिक साक्ष्य- 'राजपूत' या 'रजपूत' शब्द संस्कृत के 'राजपुत्र' का अपभ्रंश है। प्राचीन काल में 'राजपुत्र' शब्द किसी जाति के लिए नहीं बल्कि क्षत्रिय राजकुमारों या राजवंश से सम्बन्धित व्यक्तियों के लिए ही प्रयुक्त होता था।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र, अश्वघोष के ग्रन्थों, वाणभट्ट के हर्षचरित और कादम्बरी आदि में भी राजपुत्र शब्द का उल्लेख किया गया है, परन्तु ह्वेनसांग ने राजाओं का वर्णन करते हुए उनको क्षत्रिय लिखा है, राजपूत नहीं। 'राजपुत्र' शब्द का प्रयोग जो पहले राजकुमार के अर्थ में किया जाता था, पूर्व-मध्य काल में सैनिक वर्गों तथा छोटे-छोटे जमींदारों के लिए किया जाने लगा।

वस्तुत: आठवीं शती के उपरान्त 'राजपूत' शब्द शासक वर्ग का पर्याय बन जाता है।

राजपूतों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में दो मत प्रचलित हैं-

1. विदेशी इतिहासकारों का मत और
2. भारतीय इतिहासकारों का मत

1 विदेशी इतिहासकारों का मत

कर्नल जेम्स टाड.: राजपूतों की विदेशी उत्पत्ति के मत का प्रतिपादन सर्वप्रथम कर्नल जेम्स टाड ने किया। उनके अनुसार राजपूत विदेशी सीथियन जाति की संतान थे। इस मत का आधार सीथियन एवं राजपूत जातियों की कुछ सामाजिक तथा धार्मिक प्रथाओं में समानताएं हैं, जो टॉड के अनुसार इस प्रकार हैं-

1. रहन-सहन तथा वेष-भूषा में समानता
2. मांसाहार का प्रचलन
3. रथों पर सवार होकर युद्ध करना
4. यज्ञों का प्रचलन

प्रमुख राजवंश एवं उनकी राजधानी

राजवंश	संस्थापक	राजधानी
पालवंश	गोपाल	मुदगिरि (मुंगेर) - 750 ई०
प्रतिहार वंश	हरिश्चन्द्र (वास्तविक संस्थापक नागभट्ट I)	कन्नौज
राष्ट्रकूट वंश	दंतिदुर्ग	एलिचपुर (बरार) 752 ई०, बाद में मान्य खेत
सेन वंश	सामंत सेन (वास्तविक संस्थापक विजय सेन)	राढ़ (बंगाल)
कलचुरी वंश	कोकल्ल प्रथम	जबलपुर, त्रिपुरी (854 ई०)
चंदेल वंश	नन्नुक	जेजाक भुक्ति, बुंदेलखंड (9वीं सदी)
चौहान वंश	वासुदेव	शाकम्भरी (अजमेर) (आधुनिक सांभर)
गहड़वाल वंश	चंद्रदेव	कन्नौज (1080-85 ई.)
परमार वंश	सीयक हर्ष	प्रारंभ में उज्जैन, बाद में धारा
हिन्दुशाही वंश	कल्लर	उदभाण्डपुर

अध्याय 2

750 से 1200 ई. के मध्य की सांस्कृतिक प्रवृत्तियां

इस काल की कई विशेषताएं थीं। भारत में उस समय कोई ऐसा शक्तिशाली राज्य न था, जिसके नीचे बाकी राज्य आ सकते। उत्तरी भारत में **पालों, गुर्जर, प्रतिहारों, कार्कोट** आदि राजवंशों ने तो दक्षिण भारत में **राष्ट्रकूट, पल्लव, गंग, चोल, चालुक्य** आदि राजवंशों ने शासन किया। यद्यपि शासन करने वाले राजवंशों में परिवर्तन होता रहा, तथापि राजनीतिक दशा में कोई सुधार न हुआ। यह ठीक है कि गुर्जर-प्रतिहारों का स्थान गहड़वालों ने ले लिया और दक्षिण में राष्ट्रकूटों का स्थान कल्याणी के चालुक्यों ने ले लिया, परन्तु जो राजनीतिक अवस्था हर्षवर्द्धन के राज्यकाल के बाद से शुरू हुई थी, वह वैसी ही रही।

इस काल में बौद्ध धर्म और हिन्दू धर्म में बहुत परिवर्तन हुआ। दोनों में मंत्र शक्ति और तांत्रिक क्रियाएं आ गयीं। बौद्धों के वज्रयानी गुरुओं ने मंत्रों और सिद्धियों द्वारा अपने अनुयायियों का कल्याण करना शुरू कर दिया। हिन्दू धर्म में भी शाक्त सम्प्रदाय आ गया। दोनों धर्मों में वाम मार्ग आ गया। इसका प्रभाव यह हुआ कि प्राचीन धर्मों की शक्ति और महत्ता न रही। उनमें सदाचार की भावना और उच्च आदर्श न रहे। इसका परिणाम यह हुआ कि जब मुसलमानों ने भारत पर आक्रमण करके भारत पर विजय प्राप्त कर ली, उस समय हिन्दुओं अथवा बौद्धों में इतनी शक्ति नहीं थी कि वे उनको अपने में मिला सकें। भारतीय धर्मों का आन्तरिक ह्रास उसके लिए उत्तरदायी था।

इस काल की एक और विशेषता यह थी कि यद्यपि इस समय अनेक कवि, दार्शनिक, स्मृतिकार और विज्ञानवेत्ता हुए, यद्यपि उनमें वाल्मीकि और कालिदास जैसी मौलिकता न थी। उनके काव्यों में सौन्दर्य था जो कि अलंकार पर आधारित था, परन्तु उनमें स्वाभाविकता न थी। वे शब्द जाल में फंसे हुए थे और बाल की खाल उतारने में लगे थे।

सामंतवाद : उद्भव तथा विकास

सर्वप्रथम अश्वघोष ने **'बुद्धचरित'** में इस शब्द का प्रयोग **'जागीरदार' (Vassal)** के लिए किया है। गुप्त काल से **'सामन्त'** शब्द का प्रयोग सामान्यत: इसी अर्थ में किया जाने लगा। सामन्तवाद का अंकुरण शक-कुषाण काल में हुआ तथा राजपूत काल तक आते-आते यह समाज में पूर्णतया प्रतिष्ठित हो गया। जैन ग्रन्थ **'कालका चार्प कथानक'** से पता चलता है कि शक सम्राट **'षाहानुषाहि'** कहे जाते थे तथा उनकी अधीनता में कई सामन्त (षाहि) होते थे। कुषाण सम्राटों की **'राजाधिराज'** उपाधि भी सामन्तवादी व्यवस्था का सूचक है। पश्चिमी भारत में शक शासकों में **'महाक्षत्रप'** तथा **'क्षत्रप'** की उपाधियां प्रचलित थीं। कालान्तर में गुप्त सम्राटों ने इन्हीं के अनुकरण पर **'महाराजाधिराज' की** उपाधि धारण की।

इस प्रकार गुप्त काल तथा इसके बाद राजनीतिक क्षेत्र में सामन्तवाद पूर्णतया प्रतिष्ठित हो गया।

भारत में सामन्तवाद के उद्भव तथा विकास के लिए राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक परिस्थितियों ने उपयुक्त आधार प्रदान किया। बाह्य आक्रमणों के कारण केन्द्रीय सत्ता निर्बल पड़ गयी तथा चतुर्दिक अराजकता एवं अव्यवस्था फैल गयी। केन्द्रीय शक्ति की निर्बलता ने समाज में प्रभावशाली व्यक्तियों का एक ऐसा वर्ग तैयार किया जिन पर स्थानीय सुरक्षा का भार आ पड़ा। अव्यवस्था के युग में सामान्य जन अपनी जान-माल की सुरक्षा के लिए उनकी ओर उन्मुख हुआ। फलस्वरुप उत्तर भारत में कई छोटे-छोटे राजवंशों का उदय हो गया। इससे सामन्ती प्रवृत्ति को बढ़ावा मिला।

सामन्तवाद के विकास में प्राचीन भारतीय **'धर्मविजय' की** अवधारणा का भी योगदान रहा। इसके अन्तर्गत विजेता सम्राट विजित राजा के राज्य को जीत लेने के पश्चात् उस पर अपना अधिकार नहीं करता था, अपितु भेंट, उपहारादि प्राप्त कर उससे अपनी अधीनता में राज्य करने का अधिकार दे देता था। इस नीति को **'ग्रहणमोक्षानुग्रह'** कहा गया है। विजित राजाओं को अपने सम्राट को कर देना पड़ता था, उसकी आज्ञाओं का पालन करना पड़ता था तथा उसके प्रति निष्ठा सूचित करने के लिए राजसभा में उपस्थित होना पड़ता था। समुद्रगुप्त के **'प्रयाग प्रशस्ति लेख'** में सामन्तों के इन कर्त्तव्यों का उल्लेख मिलता है।

गुप्त सम्राटों की धर्मविजयी नीति के फलस्वरुप उत्तर भारत में विभिन्न सामन्त कुलों जैसे मौखरि, परिव्राजक, सनकानिक, वर्मन, मैत्रक आदि का उदय हुआ। इन वंशों के शासक **'महाराज'** की उपाधि धारण करते थे जबकि गुप्त सम्राट को **'महाराजाधिराज'** कहा जाता था। गुप्त साम्राज्य के पतनोपरान्त कई सामन्त वंशों ने अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी तथा 'महाराजाधिराज' बन बैठे। कुछ बड़े सामन्त अपने अधीन छोटे सामन्त रखने लगे, जिससे यह प्रथा व्यापक आधार प्राप्त करने लगी। सम्राट अधीनस्थ राजाओं की प्रजा से कर न लेकर उन सामन्तों से ही लेता था। गुप्त काल तथा उसके बाद से शासकों की विजय का उद्देश्य अधिक से अधिक सामन्त शासक तैयार कर उनसे करादि बटोरना हो गया। इस प्रवृत्ति ने भी सामन्तवाद को प्रोत्साहित किया।

सामन्तवाद के विकास में सामाजिक–आर्थिक कारक

सामन्तवाद के विकास में आर्थिक कारक भी सहायक सिद्ध हुए। इसके सामाजिक-आर्थिक कारक शक-कुषाण युग से स्पष्ट होने लगते हैं। इस समय ग्रामों में ग्रामपतियों का एक सम्पन्न वर्ग उठ खड़ा हुआ जिसकी अधीनता में निर्धन किसानों का वर्ग था। इसके साथ ही विदेशी जातियों ने कुलीन शासकवर्ग का स्थान ग्रहण कर लिया।

अध्याय 3

दक्षिण भारत के राजवंश (750-1200 ई.)

कदम्ब, गंग, चेर आदि राजवंशों के अतिरिक्त इस काल में कुछ ऐसे शक्तिशाली राजवंशों का उत्थान हुआ, जिन्होंने दक्षिण भारत में एकछत्र राज्य स्थापित करने का प्रयत्न किया। वाकाटक वंश के पतन के पश्चात्, दक्षिणापथ के चालुक्य तथा राष्ट्रकूट और सुदूर दक्षिण के पल्लव, चोल तथा पाण्ड्य राजवंशों ने दक्षिणी भारत में उसी प्रकार एकछत्र राज्य स्थापित करने का प्रयत्न किया, जिस प्रकार उत्तरी भारत में प्रतिहार और पाल वंश के शासकों ने किया था। इसका परिणाम भी इन राजवंशों में एक लम्बे समय तक पारस्परिक संघर्ष का होना था।

छठीं शताब्दी के मध्य से आगे आने वाले प्राय: 200 वर्षों तक बादामी के चालुक्य, कांची के पल्लव और मदुरा के पाण्ड्य राजवंश निरन्तर आपस में संघर्ष करते रहे। उसके पश्चात् बादामी के चालुक्यों का स्थान राष्ट्रकूटों ने ले लिया और प्राय: 100 वर्ष तक राष्ट्रकूटों, पल्लवों और पाण्ड्यों में संघर्ष चला। नौवीं सदी के मध्य में पल्लवों और पाण्ड्यों का स्थान चोल वंश ने ले लिया और उसके पश्चात् कल्याणी के चालुक्यों से संघर्ष किया। इन वंशों के कुछ शक्तिशाली सम्राटों ने उत्तरी भारत की राजनीति में भी हस्तक्षेप किया, और कभी-कभी यह हस्तक्षेप बहुत प्रभावपूर्ण सिद्ध हुआ। परन्तु मुख्यतया उनके संघर्ष का क्षेत्र दक्षिणी भारत रहा। इन राजवंशों के सम्राट भी उत्तरी भारत के सम्राटों की भांति दक्षिणी भारत को राजनीतिक एकता प्रदान करने में असफल रहे, और उनके संघर्ष का परिणाम भी दक्षिणी भारत का राजनीतिक विभाजन हुआ।

14वीं सदी के आरंभ में जब **अलाउद्दीन खिलजी** ने दक्षिणी भारत को जीतने के लिए अपने आक्रमण आरम्भ किए, उस समय दक्षिणी भारत में कुछेक छोटे राज्यों के अतिरिक्त देवगिरि के यादव वंश, वारंगल के काकतीय वंश, द्वारसमुद्र के होयसल वंश और मदुरा के पाण्ड्य वंश के राज्य प्रमुख थे। उत्तरी भारत की राजनीति से पूर्णतया उदासीन और उसके परिणामों से अनभिज्ञ दक्षिणी भारत के ये राज्य उस राज्य में भी अपनी-अपनी सीमाओं के विस्तार के लिए एक दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी बने हुए थे। अलाउद्दीन ने एक-एक करके और विभिन्न अवसरों पर एक का दूसरे के विरुद्ध प्रयोग करके उन सभी को पराजित किया।

अलाउद्दीन ने उनको दुर्बल करके छोड़ दिया, परन्तु गयासुद्दीन तुगलक और मुहम्मद-बिन तुगलक केवल इसी से संतुष्ट न रहे। उन्होंने उनके अस्तित्व को समाप्त कर के उन्हें दिल्ली सल्तनत के अधीन कर लिया। इस प्रकार दक्षिणी भारत के इतिहास का क्रम वही रहा जो उत्तरी भारत का रहा। यद्यपि इसमें कुछ देर अवश्य हुई। निस्सन्देह इन संघर्षों के बीच भी विभिन्न राजवंशों ने साहित्य, धर्म, ललित कलाओं (भवन निर्माण कला, मूर्ति-कला, चित्र-कला) आदि की प्रगति में सहयोग दिया, और भारत की सांस्कृतिक प्रगति में सराहनीय योगदान दिया, परन्तु राजनीतिक दृष्टि से उन सभी का परिणाम समान रहा। वे सभी मुस्लिम आक्रमणों का शिकार हो गये।

चोल राजवंश

ऐतिहासिक दृष्टि से विंध्य पर्वत शृंखला एवं नर्मदा नदी उत्तर भारत को दक्षिण से अलग करती है। विंध्य नर्मदा क्षेत्र का त्रिकोणात्मक दक्षिणी भाग दक्षिण भारत या दक्कन माना जाता है। दक्षिण भारत में नर्मदा एवं ताप्ती नदियां, विंध्य एवं सतपुड़ा पर्वत शृंखलाओं और सघन जंगल के कारण विदेशी आक्रमण नहीं हुए। लेकिन भौगोलिक बाधाओं के बावजूद उत्तर और दक्षिण भारत के मध्य संचार और संपर्क में कभी अवरोध उत्पन्न नहीं हुआ। इतिहासकार फरिश्ता के अनुसार "हिन्द के पुत्र दक्कन के तीन बेटे थे, जिनके मध्य दक्कनी प्रदेश आपस में बंटे हुए थे। इन तीनों के नाम थे **मरठ (महाराष्ट्र) कन्हड़ (कन्नड़) और तिलंग (आंध्र तेलगांना)।**

यद्यपि पुर्तगालियों के आगमन से पूर्व भारत पर कभी सामुद्रिक आक्रमण नहीं हुए, तथापि सामरिक तथा आर्थिक कारणों से दक्षिण के कुछ राजवंशों, सातवाहनों, पल्लवों, चोलों एवं मध्य काल में गोलकुंडा के कुतुबशाही वंश ने शक्तिशाली जल सेना का गठन किया था।

नर्मदा, ताप्ती, गोदावरी, कृष्णा, तुंगभद्रा और कावेरी नदी घाटियों के बीच में दक्षिण भारत के लगभग सभी राजवंशों का उदय हुआ। कृष्णा एवं तुंगभद्रा दक्षिण भारत को उत्तरी एवं दक्षिणी भागों में विभाजित करने वाली भौगोलिक-राजनीतिक प्राचीर थी। इन दोनों नदियों के बीच में रायचूर दोआब अवस्थित था, जो दक्षिण भारत का राजनीतिक क्रीड़ा स्थल था। इसके उत्तर में कल्याणी के चालुक्य और दक्षिण में पल्लव तथा चोल अपनी राजनीतिक महत्वाकांक्षा से इस भौगोलिक बाधा को तोड़ने का असफल प्रयास करते रहे। विजयनगर साम्राज्य के पतन तक दक्षिण का इतिहास इसी भौगोलिक पृष्ठभूमि का सीधा परिणाम था।

उत्तर भारत की तरह दक्षिण भारत में भी विभिन्न प्रादेशिक क्षेत्रों में राजवंशों का उदय हुआ, परन्तु कृष्णा नदी का उत्तरी एवं दक्षिणी भाग दक्षिण भारत की राजनीतिक महाशक्तियों के मध्य विभाजक रेखा बना रहा। आठवीं से दसवीं शताब्दियों के मध्य कृष्णा के उत्तर में राष्ट्रकूट तथा दक्षिण में कांची के पल्लवों के राज्य की तरह ग्यारहवीं एवं बारहवीं शताब्दियों में क्रमश: यही स्थिति कल्याणी के चालुक्यों एवं तंजावूर के चोलों की थी।

ऐतिहासिक स्रोत

चोल राजवंश का इतिहास जानने के लिए साहित्यिक, पुरालेखीय विदेशी वर्णन तथा अन्य स्रोत प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं।

अध्याय 4

तुर्कों का आगमन

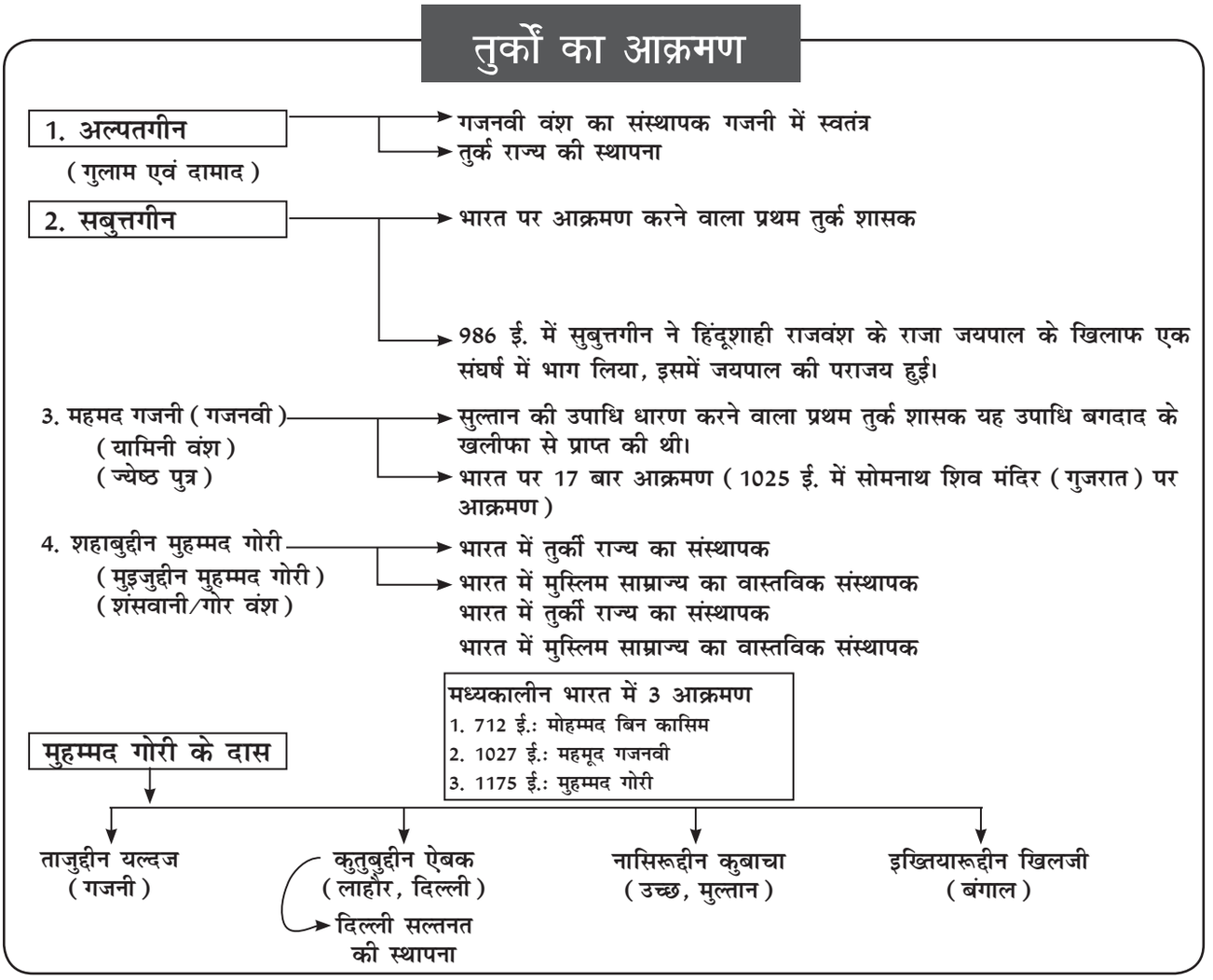

आठवीं शती के प्रारम्भ से मुहम्मद बिन कासिम के नेतृत्व में सिन्ध पर जो अरब आक्रमण हुआ था, उसका कोई स्थाई परिणाम नहीं हुआ। अरबों का राज्य सिन्ध और मुल्तान के पूर्व में नहीं फैल सका तथा उनकी शक्ति शीघ्र ही क्षीण हो गयी। उनके इस अधूरे कार्य को तुर्कों ने पूरा कर दिया। तुर्क चीन की उत्तरी-पश्चिमी सीमाओं पर निवास करने वाली एक असभ्य एवं बर्बर जाति थी। उन्होंने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया तथा इसका प्रचार पूरे जोर-शोर के साथ करने में जुट गये। उनका उद्देश्य एक विशाल मुस्लिम साम्राज्य स्थापित करना था।

भारत में सबसे पहले जो तुर्क आक्रमणकारी आये, वे गजनी के शासक कुल से सम्बन्धित थे। 962 ईस्वी में **अलप्तगीन** नामक एक महत्वाकांक्षी व्यक्ति ने गजनी में एक स्वतंत्र तुर्की राज्य की स्थापना की। उसके दामाद **सुबुक्तगीन** ने उसके वंश का अन्त कर 977 ई. में राजगद्दी हथिया ली। वह एक शक्तिशाली शासक था जो भारत पर आक्रमण की योजनाएं तैयार करने लगा। पंजाब के **हिन्दू शासक जयपाल** ने उसकी योजनाओं को प्रारम्भ में ही विफल कर देने के उद्देश्य से 986-87 ई. में एक बड़ी सेना के साथ गजनवी पर आक्रमण कर दिया। परन्तु दुर्भाग्यवश जयपाल को अत्यन्त अपमानजनक सन्धि करनी पड़ी। हर्जाने के रूप में जयपाल सुबुक्तगीन को 50 हाथी तथा कुछ प्रदेश देने का वचन दिया, परन्तु लाहौर पहुंचकर उसने सन्धि की अपमानपूर्ण शर्तों को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया।

अध्याय 5

गुलाम शासकों के अंतर्गत दिल्ली सल्तनत

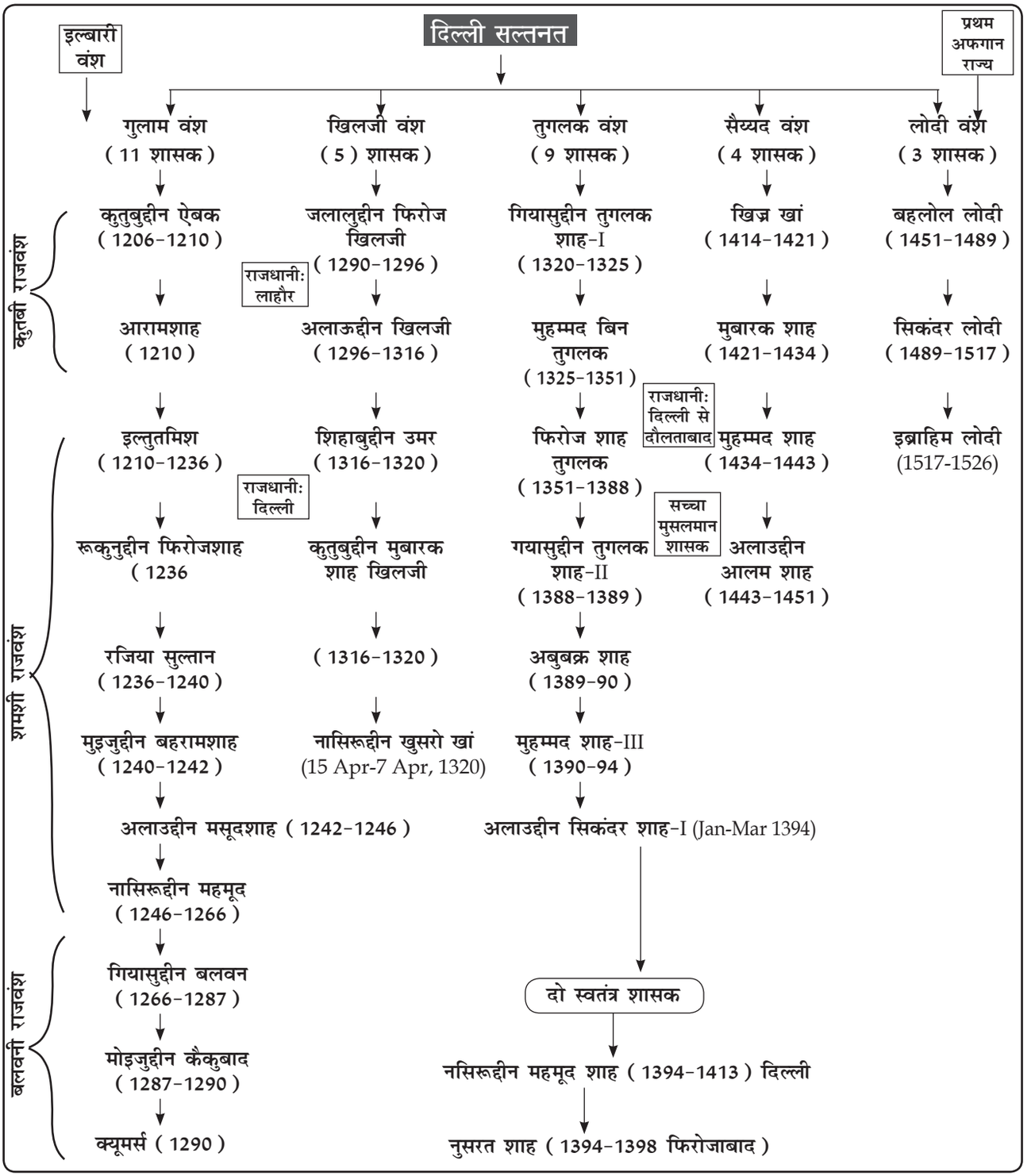

तुर्क आक्रमणकारियों द्वारा दिल्ली से शासित राज्य को दिल्ली सल्तनत के नाम से पुकारा जाता है। 13वीं शताब्दी के प्रारंभ में दिल्ली सल्तनत की स्थापना उत्तरी भारत में तुर्कों के सैनिक अभियानों का प्रत्यक्ष परिणाम थी। यह प्रक्रिया दो चरणों में सम्पन्न हुई। प्रथम चरण गजनवी द्वारा (1000-1027 ई.) और द्वितीय चरण मुहम्मद गोरी (1175-1206 ई.) के द्वारा सम्पन्न हुआ।

गुलाम वंश

1206 से 1290 ई. तक उत्तरी भारत के कुछ भागों पर जिन तुर्की शासकों ने शासन किया, उन्हें फारसी इतिहासकार 'मुइज्जी', 'कुत्बी', 'शम्सी' और 'बल्बनी' वंशों में विभाजित करते हैं। आधुनिक लेखकों ने उन्हें **'पठान', 'गुलाम वंश', 'आरंभिक तुर्क सुल्तान', 'तुर्क ममलूक'** और **'इल्बरी वंश'** आदि नामों से संबोधित किया है। वे निश्चित रूप से पठान नहीं थे, इसलिए उन्हें पठान सुल्तान नहीं कहा जा सकता। इन्हें गुलाम शासक भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि तथाकथित 'गुलाम वंश' के शासक कभी गुलाम नहीं रहे थे। तीनों राजवंशों के संस्थापक कुतुबुद्दीन ऐबक, इल्तुतमिश और बल्बन गुलाम थे।

परन्तु इनमें से पहले दो दासता से मुक्त कर दिए गए थे। उन्हें **'ममलूक'** कहना अधिक उचित है, क्योंकि उससे आशय गुलामी के बंधन से मुक्त माता-पिताओं से उत्पन्न वशंजों से है। पुनः ये सभी शासक इल्बरी तुर्क भी नहीं थे। शम्सुद्दीन इल्तुतमिश इल्बरी तुर्क था, किन्तु ऐबक इल्बरी तुर्क नहीं था। बल्बन स्वयं को **इल्बरी तुर्क** कहता है, परन्तु उसके दरबारी इतिहासकार मिनहाज-उस-सिराज जुजानी ने जो तथ्य दिए है उनसे यह सिद्ध नहीं होता। अतः इन राजवंशों के सभी शासकों को **'प्रारंभिक तुर्क शासक'** या **'आदि तुर्क'** कहना अधिक तर्कसंगत है।

मामलूक वंश (1206 – 1290ई.)

कुतबी रावंश	रामथी राजवंश	बलबनी राजवंश
कुतुबुद्दीन ऐबक	इल्तुतमिश	गियासुद्दीन बलबन
आरामशाह	बकनुद्दीन फिरोजशाह बहरामशाह नसिरूद्दीन महमूद	माइनुद्दीन कैकुबाद

कुतुबुद्दीन ऐबक (1206 – 10 ई.)

फख्रे मुदब्बिर के अनुसार जब मुइज्जुद्दीन मुहम्मद गोरी 1205-6 ई. में खोखरों को हराकर गजनी वापस लौट रहा था तो उसने औपचारिक रूप से ऐबक को अपने भारतीय ठिकानों का प्रतिनिधि नियुक्त किया। उसे **'मलिक'** का पद प्रदान किया गया तथा उसे **'वली अहद'** या उत्तराधिकारी घोषित किया गया। परन्तु मुहम्मद गोरी की मृत्यु के बाद ऐबक को जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा उनसे स्पष्ट है कि उसने अपने उद्यम और सैनिक उपलब्धियों के बल पर ही अपनी स्थिति को प्राप्त किया था।

मुइज्जुद्दीन मुहम्मद गोरी अपनी आकस्मिक मृत्यु के कारण अपने उत्तराधिकारी के संबंध में संभवतः निश्चित निर्णय नहीं ले पाया था। गोरी को कोई बेटा नहीं था और अपने परिवार के किसी व्यक्ति या गोर के किसी जनजातीय सरदार पर वह विश्वास नहीं करता था। सल्तनत की रक्षा के लिए वह केवल अपने दासों पर विश्वास करता था। मिनहाज उस-सिराज के अनुसार उसने एक बार कहा था कि "अन्य सुल्तानों के एक बेटा हो सकता है या दो, मेरे अनेक हजार बेटे हैं, अर्थात् मेरे तुर्की गुलाम, जो मेरे राज्यों के उत्तराधिकारी होंगे, और जो मेरे बाद उन राज्यों के खुत्बे में मेरा नाम सुरक्षित रखेंगे।"

1192 से 1206 ई. तक ऐबक भारत में मुहम्मद गोरी के प्रतिनिधि के रूप में काम किया था। जब गोरी की मृत्यु हुई तो उसके प्रमुख विश्वासपात्रों में से तीन, अर्थात् ताजुद्दीन यल्दूज, नासिरुद्दीन कुबाचा और कुतुबुद्दीन ऐबक की स्थिति एकसमान थी। अतः इन तीनों में सत्ता के लिए संघर्ष होना अनिवार्य था, और योग्यतम व्यक्ति ही उसकी सल्तनत प्राप्त कर सकता था। गजनी के सिंहासन पर किरमान का शासक ताजुद्दीन यल्दूज आरूढ़ हुआ। उसने बगदाद के खलीफा (अल मुंत सिर बिल्लाह) से मान्यता प्राप्त की और ऐसा करने वाला वह प्रथम मुस्लिम शासक बना।

पंजाब पर प्रभुत्व को लेकर ऐबक और यल्दूज में युद्ध हुआ। इस युद्ध में ऐबक ने यल्दूज को पराजित कर दिया और गजनी पर भी अधिकार कर लिया (1208 ई.) तथा 40 दिनों तक अपने अधिकार में रखा। गजनी में ऐबक का निवास संक्षिप्त रहा क्योंकि वहां की प्रजा यल्दूज समर्थक थी और जल्दी ही यल्दूज ने गजनी पर पुनः अधिकार कर लिया। ऐबक ने भारत लौटते हुए लाहौर में निवास ग्रहण किया ताकि सीमांत क्षेत्र पर निगरानी रख सके।

ऐबक अनौपचारिक रूप से **25 जून, 1206 ई.** को गद्दी पर बैठा, परन्तु उसकी सत्ता को औपचारिक मान्यता और संभवतः नियुक्ति पत्र तीन वर्ष बाद मुइज्जुद्दीन मुहम्मद गोरी के वैध उत्तराधिकारी महमूद से प्राप्त हुआ। अतः इन वर्षों में उसे मलिक और सिपहसालार की पदवी ही प्राप्त रही थी। संभवतः इसीलिए वह अपने नाम के सिक्के प्रचलित नहीं कर सका।

सन् 1206 ई. में भारत में गोरियों के अधीन मुल्तान, उच्च, नहरवाला, पुरशोर, सियालकोट, लाहौर, तबरहिंद, तरायन, अजमेर, हांसी, सुरसुती, कुहराम, मेरठ, कोयल, दिल्ली, धनकर, बदायूं, ग्वालियर, मीरा, बनारस, कन्नौज, कालिंजर, अवध, मालवा, बिहार तथा लखनौती शामिल थे। परन्तु इनमें से कुछ जगहों पर उसका नियंत्रण ढीला पड़ गया था। अतः ऐबक ने नए प्रदेशों को जीतने की अपेक्षा जीते हुए प्रदेशों की सुरक्षा की ओर ध्यान देना आवश्यक समझा।

भारत वर्ष में ऐबक के जीवन को तीन चरणों में विभाजित किया जा सकता है। 1192 से 1206 ई. तक मुइज्जुद्दीन के प्रतिनिधि के रूप में वह उत्तरी भारत के कुछ भागों का शासक था; 1206 से 1208 ई. तक वह गोरी की भारतीय सल्तनत का मालिक या सिपहसालार था; और 1208 से 1210 ई. तक वह एक स्वतंत्र भारतीय राज्य का औपचारिक अधिकार प्राप्त शासक था। प्रथम काल सैनिक गतिविधियों से पूर्ण था, दूसरा राजनयिक कार्यों में व्यतीत हुआ और तीसरा दिल्ली सल्तनत का मानचित्र निर्माण करने में बीता।

भारत वर्ष में ऐबक की उपलब्धियां एक विजेता की थी, परन्तु वह अपनी दिली और बौद्धिक विशेषताओं के लिए प्रसिद्ध था।

अध्याय 6

खिलजी वंश

सन् 1286-87 ई. में बलबन की मृत्यु के बाद दिल्ली सल्तनत में पुनः उत्तराधिकार की समस्या उत्पन्न हुई। बलबन का बड़ा बेटा मुहम्मद पहले ही 1285 ई. में मंगोल नेता तमीर के नेतृत्व में हुए पंजाब पर आक्रमण का मुकाबला करते हुए मारा गया था। दूसरा बेटा बुगरा खां बंगाल का शासक था, और दिल्ली की राजनीति में उसे अभिरुचि नहीं थी। बलबन ने शहीद राजकुमार मुहम्मद के पुत्र कैखुसरो को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करने की इच्छा व्यक्त की। परन्तु मलिकों ने उसे मुल्तान भेज दिया और बुगरा खां के पुत्र कैकुबाद को मुइजुद्दीन का खिताब देकर गद्दी पर बैठा दिया।

कैकुबाद के समय में सत्ता का संघर्ष सुल्तान और उसके नायब निजामुद्दीन के बीच छिड़ा जिससे मलिक फिरोज का राजनीतिक महत्त्व बढ़ा। कैकुबाद ने समाना से फिरोज खिलजी को बुलाया, और उसे बरन का राज्यपाल और आरिजे ममालिक (युद्ध मंत्री) नियुक्त किया। उसे **'शाइस्ता खां'** की उपाधि प्रदान की। मलिक फिरोज खिलजी ने अपने भाई शिहाबुद्दीन तथा अली गुर्शप (अलाउद्दीन खिलजी) सहित अनेक वर्षों तक बलबन की सेवा की थी। जब खिलजी सरदारों का प्रभाव बढ़ने लगा, तो इल्बरी अभिजातों ने ईर्ष्या के कारण उनके विनाश का षड्यन्त्र रचा। लेकिन तब तक कैकुबाद लकवा का शिकार हो चुका था। उसके नवजात पुत्र केमुर्स को अब सिंहासन पर बैठा दिया गया।

बरनी के कथन से स्पष्ट होता है कि दिल्ली में दो दल थे, जो केमुर्स को नाममात्र का शासक बनाकर स्वयं शासन पर नियंत्रण करना चाहते थे। इल्बरी वंश के समर्थक अपने हाथों में ही शक्ति रखना चाहते थे। मलिक छज्जू तथा जलालुद्दीन खिलजी का इस संघर्ष में सर्वोच्च स्थान था। अंततः जलालुद्दीन खिलजी ने मुइजुद्दीन को जमुना नदीं में फेंकवा दिया तथा तीन महीने तक केमुर्स के संरक्षक के रूप में काम किया। 1290 ई. में ही उसने किलोखरी में स्वयं को शासक घोषित कर दिया।

खिलजी क्रांति

मूलतः खिलजी तुर्क थे लेकिन दीर्घ-काल तक अफगानिस्तान में रहने के कारण उन्होंने इस क्षेत्र की आदतों तथा रीति-रिवाजों को अपना लिया था। उनमें से कुछ महमूद गजनवी और मुहम्मद गोरी के सैनिकों के रूप में भारत आए थे। मध्य एशिया और अफगानिस्तान में मंगोल उथल-पुथल के फलस्वरूप इस जाति के अनेक लोग शरणार्थी के रूप में भी भारत आए थे। यहां उन्हें शासक जाति के इल्बरी तुर्कों से भिन्न समझा गया। लगभग एक सदी तक सत्ता पर इल्बरी तुर्कों का एकाधिकार रहा था। इल्बरी तुर्कों ने जातिवाद पर अधिक बल दिया तथा तुर्कों के हितों की सुरक्षा सर्वोपरि था। बलबन के काल में विरोधी तत्त्वों के दमन के लिए हिंसात्मक तरीके भी अपनाए गए थे।

लेकिन खिलजी दल की सरल विजय ने यह सिद्ध कर दिया कि जातीय निरंकुशता और अधिक समय तक राज नहीं कर सकती थी। उनके राज्यारोहण ने इस धारणा का अंत कर दिया कि प्रभुसत्ता पर केवल विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग का ही एकाधिकार होता है।

खिलजी वंश ने भारतीय मुसलमानों को बड़े प्रशासनिक पदों पर नियुक्त करने की परंपरा आरम्भ की। साथ ही, कुलीनता के स्थान पर प्रतिभा को अधिक महत्त्व दिया गया। खिलजी शासकों ने विशेषकर अलाउद्दीन ने राजनीति को धर्म से पृथक रखने का प्रयास किया और उसके द्वारा साम्राज्य विस्तार का एक नया अध्याय सल्तनत के इतिहास में आरंभ हुआ।

इन सभी कारणों से खिलजियों द्वारा सत्ता पर अधिकार केवल एक वंश के स्थान पर दूसरे वंश की स्थापना के रूप में नहीं देखा जा सकता है। यह एक व्यवस्था की समाप्ति तथा एक भिन्न व्यवस्था के आरंभ का सूचक है। इन दूरगामी तथा निर्णायक परिवर्तनों के कारण ही मोहम्मद हबीब ने खिलजी वंश की स्थापना को एक क्रांति की संज्ञा दी है।

जलालुद्दीन खिलजी (1290 – 96 ई.)

खिलजी वंश का संस्थापक मलिक फिरोज था जिसने जलालुद्दीन की पदवी धारण की। जून 1290 ई. में कैकुबाद द्वारा निर्मित किलोखरी के महल में जलालुद्दीन ने अपना राज्याभिषेक करवाया और सुल्तान बन गया। वह एक निष्ठावान निष्कपट, दयालु और उदार व्यक्ति था। पर वह शाही सत्ता का दृढ़ता के साथ प्रयोग करने में असमर्थ रहा। बलबन की कठोर विचारधारा में पले यथार्थवादी राजनीतिज्ञ उसके भावुकता से प्रेरित कार्यों से निराश हुए।

जलालुद्दीन का दुर्भाग्य यह रहा कि उसके सत्ता में आते ही विद्रोह तथा षड्यन्त्रों का क्रम शुरू हो गया। उसने विद्रोहियों के प्रति दुर्बल नीति अपनाई और कहा **"मैं एक वृद्ध मुसलमान हूं, मुसलमानों का रक्त बहाने की मेरी आदत नहीं है।"** इसी प्रकार उसने अपनी विदेश नीति में भी दुर्बलता का परिचय दिया। रणथंभौर पर उसका अभियान विफल रहा और मंगोल आक्रमणकारियों के साथ भी उसने संधि कर ली।

जलालुद्दीन की दुर्बलता का लाभ उसके दामाद और भतीजे **अलाउद्दीन खिलजी** ने उठाया। अलाउद्दीन उस समय **कड़ा (इलाहाबाद)** का गर्वनर था। भिलसा, चंदेरी और देवगिरि के सफल अभियानों में उसने काफी धन लूट के रूप में अर्जित किया था। इस कोष और प्रशिक्षित सशस्त्र सेवाओं की मदद से **अली गुर्शस्प (अलाउद्दीन खिलजी)** ने जलालुद्दीन को कड़ा बुलाकर धोखे से उसकी हत्या कर दी और सत्ता पर अधिकार कर लिया।

अध्याय 7

तुगलक, सैयद और लोदी वंश

तुगलक वंश दिल्ली सल्तनत का एक राजवंश था जिसने सन् 1320 से लेकर सन् 1414 तक दिल्ली की सत्ता पर राज किया। गयासुद्दीन ने एक नये वंश अर्थात तुगलक वंश की स्थापना की सिंचाई के लिए नहर का प्रथम निर्माण गयासुद्दीन तुगलक के द्वारा किया गया था, जिसने 1412 तक राज किया। इस वंश में तीन योग्य शासक हुए। गयासुद्दीन, उसका पुत्र **मुहम्मद बिन तुगलक (1325-51)** और उसका उत्तराधिकारी **फिरोज शाह तुगलक (1351-87)** एवं दिल्ली सल्तनत में सर्वाधिक नहर का निर्माण फिरोज तुगलक के द्वारा किया गया था। इनमें से पहले दो शासकों का अधिकार करीब-करीब पूरे देश पर था। फिरोज का साम्राज्य उनसे छोटा अवश्य था, पर फिर भी अलाउद्दीन खिलजी के साम्राज्य से छोटा नहीं था। फिरोज की मृत्यु के बाद दिल्ली सल्तनत का विघटन हो गया और उत्तर भारत छोटे-छोटे राज्यों में बंट गया। यद्यपि तुगलक 1412 तक शासन करत रहे, तथापि 1398 में तैमूर द्वारा दिल्ली पर आक्रमण के साथ ही तुगलक साम्राज्य का अंत माना जाना चाहिए।

तुगलक वंश

गयासुद्दीन तुगलक (1320–25 ई.)

खुसरो खां नासिरुद्दीन खुसरो के नाम से सल्तनत की गद्दी पर बैठा। दिल्ली के प्रसिद्ध सूफी संत निजामुद्दीन औलिया ने भी उसे मान्यता प्रदान की। परन्तु 1320 ई. में गयासुद्दीन तुगलक (गाजी मलिक) के नेतृत्व में कुछ अधिकारियों ने विद्रोह कर सत्ता पर अधिकार कर लिया। तुगलक सुल्तान करौना जनजाति के थे, जो तुर्कों और मंगोलों की एक मिश्रित जनजाति थी। 1321 ई. में गयासुद्दीन ने अपने पुत्र **जौना खां** को वारंगल के विद्रोही शासक प्रताप रुद्रदेव के विरुद्ध अभियान के लिए दक्षिण भेजा। परन्तु इस अभियान में सफलता नहीं मिली। 1322 ई. में दूसरा अभियान सफल रहा।

तेलंगाना अभियान के बाद **जाजनगर में 1324 ई. में उलुग खां के नेतृत्व में सैनिक अभियान भेजा गया** क्योंकि भानुदेव-II (1306-28 ई.) ने रूद्रदेव की सहायता की थी। इसके बाद गुजरात विद्रोह को दबाया गया। उसका अंतिम सैनिक अभियान बंगाल के विरुद्ध हुआ। बलबन के पुत्र बुगरा खां ने बंगाल को स्वतंत्र घोषित कर दिया था। उसकी मृत्यु के बाद उसके पुत्रों में उत्तराधिकार के लिए आपसी संघर्ष हुआ। सुल्तान ने तिरहुत के रास्ते लखनौती पहुंचकर बंगाल के शासक को पराजित किया। नसीरुद्दीन को लखनौती का पेशकशी शासक बनाया गया, जबकि सतगांव तथा सोनारगांव अमीर तातार खां के नियंत्रण में रखे गये।

बंगाल से लौटते समय सुल्तान ने तिरहुत पर आक्रमण कर मिथिला के कर्नाट शासक को पराजित किया। यहां यल तलबागा के पुत्र अहमद खां को शासन सौंपा गया।

गयासुद्दीन के समय में शेर मुगल के नेतृत्व में मंगोल आक्रमण हुए। मलिक शाही नायब वजीर के नेतृत्व में सेना ने समाना के राज्यपाल गुर्शस्प की सहायता से इस आक्रमण को विफल कर दिया।

बंगाल अभियान से लौटने पर स्वयं उसके द्वारा निर्मित **नई राजधानी तुगलकाबाद** से 8 किलोमीटर की दूरी पर **अफगानपुर** में उसके लड़के **जौना खां** द्वारा स्वागत समारोह की तैयारी की गई। यहां एक लकड़ी के भवन के गिरने से फरवरी-मार्च 1325 ई. में सुल्तान की मृत्यु हो गई।

ग्यासुद्दीन तुगलक द्वारा किया गया सुधार कार्य

गयासुद्दीन तुगलक ने आर्थिक सुधार करते हुए उन सबसे धन राशि को वापस खजाने में जमा कराने के लिए कहा जिन्हें खुसरो खां ने मनमाने रूप से दी थी। दिल्ली के सूफी संत निजामुद्दीन औलिया को भी पैसा लौटाने के लिए कहा गया जो उन्हें धार्मिक अनुदान के रूप में खुसरो खां के समय दिया गया था। बंगाल अभियान के बाद यह प्रश्न फिर उठ सकता था, किन्तु इससे पहले ही सुल्तान के लिए दिल्ली दूर हो गई थी।

गयासुद्दीन ने अलाउद्दीन खिलजी के विपरीत उदारता की नीति अपनाई जिसे बरनी ने **'रस्मेमियाना' (मध्यपंथी नीति)** कहा है। मध्यवर्ती जमींदारों-खूतों, मुकद्दमों को उनके पुराने अधिकार लौटा दिये गये तथा लगान की मात्रा में भी परिवर्तन किया गया जिससे किसानों को लाभ हुआ। लगान निश्चित करने में बटाई का प्रयोग फिर आरंभ हुआ। बरनी के अनुसार **लगान उपज का 1/10 या 1/11 भाग** था। परपरांगत दर 1/5 थी जो अलाउद्दीन के समय में 1/2 तथा मुबारक खिलजी के समय में 1/5 थी।

बरनी एक और स्थान पर बताता है कि 1/10 या 1/11 दर चालू लगान पर बढ़ोतरी के रूप में थी जो उचित प्रतीत होता है। सुल्तान ने लगान संबंधी एक नियमावली भी जारी किया।

सुल्तान ने अमीरों द्वारा कृषि के लगान की इजारेदारी (Farming System) का अंत कर दिया। फवाजिल (अतिरिक्त आमदनी) को इक्तादारों द्वारा केंद्रीय कोष में जमा करने के उपाय किये गये। सुल्तान ने सैन्य संगठन की कार्यकुशलता को बनाये रखा तथा **'दाग'** एवं **'चेहरा'** की पद्धति को प्रभावशाली ढंग से लागू किया। बरनी के अनुसार इन सुधारों से लोगों को ऐसा लगने लगा जैसे अलाउद्दीन खिलजी वापस आ गया है।

अध्याय 8

सल्तनतकालीन भारत की सामान्य दशा

दिल्ली सल्तनत की प्रकृति

उत्तर भारत में अनेक युद्धों में विजय प्राप्त करने के पश्चात् प्रारम्भिक मुस्लिम तुर्की राज्य की स्थापना हुई। इन तुर्कों के पास साधनों की कमी थी तथा स्थानीय जनता की तुलना में इनकी संख्या काफी कम थी। अत: इन प्रदेशों के साधनों पर आधिपत्य करना उनके लिए आवश्यक था। इसका तुर्की राज्य की प्रकृति पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा।

इस्लामी धर्मग्रंथों में **"शरा"** को संप्रभुता का आधार स्तंभ माना गया है जिसका आधार कुरान है। इसके आधार पर इतिहासकारों के वर्ग ने यह मत व्यक्त किया कि मुस्लिम राजसत्ता का आधार धार्मिक या धर्म सत्तात्मक (Theocratic) है। अन्य लेखकों का विचार है कि धर्म आधारित राज्य में पुरोहित वर्ग का शासन होना चाहिए, जो कि दिल्ली सल्तनत में विद्यमान नहीं था।

धर्म सत्तात्मक व्यवस्था में राज्य की व्यवस्था का संचालन धार्मिक नियमों एवं व्यवस्थाओं के अनुरूप किया जाता है। साथ ही इस्लामी कानूनों तथा नियमों को धर्मालयों द्वारा कार्यान्वित किया जाता है। सल्तनत काल में इस व्यवस्था में अनेक परिवर्तन किये गये।

सैद्धांतिक तथा औपचारिक रूप से दिल्ली सुल्तानों ने इस्लामी कानूनों **"शरियत"** की सर्वोच्चता को मान्यता दी और खुलेआम उल्लंघन को रोकने का प्रयास किया। इस्लामी कानूनों के अतिरिक्त उन्होंने धर्मनिरपेक्ष अधिनियम भी बनाये।

मुबारक खिलजी ने यह घोषणा की कि दिल्ली सल्तनत संप्रभु है। साथ ही उसने अपने आपको खलीफा-ए-काबुल अलिमीन तथा अमीर-उस-मोमिनीन अर्थात् स्वयं को खलीफा घोषित किया।

गयासुद्दीन तुगलक ने भी अपने-आपको नासिर-ए-अमीर उल मोमिनीन (खलीफा का सहायक) घोषित कर दिया, परन्तु उसने अपने को 'स्वयं खलीफा' नहीं कहा। मुहम्मद बिन तुगलक ने अपने शासन के आरम्भिक काल में खलीफा के नाम की चर्चा नहीं की। परन्तु अपने शासन काल के अंतिम दिनों में उसने आंतरिक संकटों से निपटने के लिए अब्बासी खलीफा अल मुस्तकिफि का नाम सिक्के पर खुदवाया। फिरोजशाह तुगलक ने मिस्र के अब्बासी खलीफा से मान्यता पत्र तथा मानसूचक वस्त्र प्राप्त किये थे। उसके सिक्कों पर खलीफा अल हकिम (1340-33 ई.) का नाम अंकित है।

फिरोजशाह के उत्तराधिकारियों के सिक्कों पर खलीफा अल मुतवक्किल के नाम मिलते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि खलीफा का नाम सिक्कों पर अंकित करना एक परंपरा बन गई थी; क्योंकि खलीफा की मृत्यु के बाद भी उनके नाम अंकित किये जाते थे।

नव सृजित विभाग

विभाग	सृजनकर्त्ता
• दीवाने-ए-आरिज	बलबन
• दीवाने-ए-वकूफ	जलालुद्दीन फिरोज खिलजी
• दीवाने-ए-मुस्तखराज	अलाउद्दीन खिलजी
• दिवाने-ए-अमीरकोही	फिरोज तुगलक
• दिवाने बंदगान	फिरोज तुगलक
• वकील-ए-सुल्तान	नासिरुद्दीन महमूद तुगलक

सैयद तथा लोदी सुल्तानों के सिक्कों पर जो उपाख्यान मिलते हैं, उनका कोई विशेष अर्थ नहीं था। फारस के राजनीतिक प्रबंध का प्रमुख अंग निरंकुश राज्य शासन था। अनेक सुल्तानों ने फारस के सम्राटों की नीति का अनुसरण किया। समकालीन इतिहासकार जियाउद्दीन बरनी ने **'जहांदारी' (धर्मनिरपेक्ष)** और **'दीनदारी' (धार्मिक)** के अंतर को रेखांकित किया है। उसका कहना है कि 'दुनियादारी' राजत्व जिसकी चरम पराकाष्ठा है, दीनदारी के सर्वथा प्रतिकूल है। उसने यह भी कहा कि गैर-इस्लामी प्रथाओं को स्वीकृत किये बिना सार्वभौम सत्ता संभव नहीं हो पाती है। राजत्व के उद्भव के संबंध में बरनी अपना विचार व्यक्त करता है कि राजत्व का अर्थ शक्ति है, चाहे वह वैध साधनों से प्राप्त की गई हो चाहे बलपूर्वक, उसमें राजवंशीय परंपरा का कोई सर्वमान्य नियम नहीं है।

उत्तर भारत में नवस्थापित राज्य ने अनेक ऐसी नीतियों और प्रथाओं को जन्म दिया जो मूलभूत इस्लामी परंपरा के अनुकूल नहीं थी। उदाहरणस्वरूप, इल्तुतमिश के शासन काल में (1210-36 ई.) एक कट्टर मुस्लिम समुदाय **'शफाई'** ने सुल्तान से कहा कि वह इस्लामी कानून को कड़ाई से लागू करें। साथ ही हिन्दुओं से यह कहा जाये कि वे या तो इस्लाम धर्म को स्वीकार करें या मृत्यु। परन्तु सुल्तान के वजीर जुनैदी ने कहा कि यह विचार स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि मुसलमान संख्या में कम हैं।

सल्तनत के वजीर

सुल्तान	वजीर
• इल्तुतमिश	निजामुलमुल्क जुनैदी
• जलालुद्दीन खिलजी	ख्वाजा खातिर
• अलाउद्दीन खिलजी	मलिक काफूर, ताजुलमुल्क
• मुहम्मद तुगलक	ख्वाजा जहां
• फिरोज तुगलक	खान-ए-जहां मकबूल
• सिकन्दर लोदी	मियां भुआ

अध्याय 9

विजयनगर साम्राज्य

14वीं शताब्दी के प्रथम चरण में द्वारसमुद्र के होयसलों के अतिरिक्त लगभग संपूर्ण दक्कन को दिल्ली सल्तनत में शामिल किया जा चुका था, लेकिन आरम्भ से ही मुहम्मद बिन तुगलक को दक्षिण में सर्वाधिक विद्रोहों का सामना करना पड़ा। 1325 ई. में कर्नाटक के सागर में बहाउद्दीन गुर्शप के विद्रोह को दबाने के लिए जब मुहम्मद तुगलक ने सागर को प्रस्थान किया तो गुर्शप ने भागकर कंपिली में शरण लिया। मुहम्मद तुगलक ने कंपिली पर आक्रमण करके उसे भी दिल्ली सल्तनत में शामिल कर लिया।

कंपिली विजय के दौरान मुहम्मद तुगलक उस राज्य के दो अधिकारियों- **हरिहर** और **बुक्का** नामक दो भाइयों को बंदी बनाकर दिल्ली लाया। तत्पश्चात् दक्कन में विद्रोहों का एक क्रम शुरू हो गया। इन विद्रोहों की स्थिति से निपटने के लिए मुहम्मद तुगलक ने हरिहर और बुक्का को मुक्त करके तुगलक सेनापति के रूप में दक्षिण भेजा। हरिहर और बुक्का ने कंपिली जाकर वहां के विद्रोह का दमन किया।

ऐसा कहा जाता है कि उसी बीच वे **'विद्यारण्य'** नामक एक संत के प्रभाव में आये और उन्होंने विजयनगर की स्थापना की और अपनी स्वतंत्रता की घोषणा कर दी। हरिहर और बुक्का संगम के पुत्र थे। अत: उन्होंने अपने पिता के नाम पर ही अपने **वंश (संगम)** की स्थापना की। इसीलिए **1336 ई. में स्थापित विजयनगर के पहले वंश को 'संगम वंश' कहा जाता है।**

विजयनगर की उत्पत्ति के संबंध में इतिहासकार एक मत नहीं हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार इसके संस्थापक काकतियों के अधिकारी थे और काकतीय वंश के पतन के बाद उन्होंने कंपिली राज्य में सेवा की, जहां से उन्हें बंदी बनाकर दिल्ली लाया गया। इस संबंध में दूसरे विद्वानों का विचार है कि वे होयसलों के सामंत थे और मूलत: कर्नाटक के रहने वाले थे। इन विवादों के बावजूद यह सत्य है कि 1336 ई. में हरिहर और बुक्का बंधुओं ने विजयनगर के प्रथम संगम राजवंश की स्थापना की थी।

विजय नगर संबंधी प्रमुख ग्रंथ/अभिलेख	
ए फॉरगेटन एम्पायर	(एक विस्मृत साम्राज्य) रावर्ट स्वेल
मनुचरितम्	पेद्दना
मदुराविजयम्	गंगादेवी (कंपन की मदुरा विजय का उल्लेख)
गंगा दास प्रलाप विलासम	गंगाधर
सलुवम्युदयम	राजनत्थ दिन्दिमा
बागपेल्लसी ताम्रपात्र	हरिहर प्रथम
वित्रागुंता अभिलेख	संगम द्वितीय (संगम बन्धुओं की वंशावली)
चन्नराय पटीना अभिलेख	हरिहर द्वितीय
श्रीरंगम ताम्रपत्र	देवराय द्वितीय
देवापल्ली ताम्रपत्र	इम्माड़ि नरसिंह (सालुव वंश की वंशावली)
कल्याणमण्डपम	विजयनगर

संगम वंश

1336 ई. में विजयनगर की स्थापना के बाद हरिहर ने अपने भाई बुक्का की मदद से विजयनगर साम्राज्य का विस्तार किया। 1346 ई. में मदुरा के विरुद्ध युद्ध करते हुए अंतिम होयसल शासक वल्लाल पट की मृत्यु हो गयी। अत: हरिहर ने अपने भाइयों की सहायता से होयसल को विजयनगर में शामिल कर लिया। **1347 ई. में कदंब प्रदेश को विजयनगर में शामिल किया गया।**

हरिहर के शासन काल में ही बहमनी साम्राज्य के संस्थापक **अलाउद्दीन हसन बहमनशाह** ने कृष्णा और तुंगभद्रा नदियों के बीच स्थित रायचूर के किले पर अधिकार कर लिया, जिसके कारण विजयनगर और बहमनी साम्राज्य में आगामी 200 वर्षों तक संघर्ष हुआ। हरिहर ने 1356 ई. में मदुरा के सुल्तान पर आक्रमण करके इस क्षति की कुछ सीमा तक पूर्ति कर ली।

1356 ई. में विजयनगर के सिंहासन पर हरिहर I का स्थान बुक्का I ने प्राप्त किया। उसे दो मोर्चे पर युद्ध करना पड़ा। बहमनी सुल्तानों के विरुद्ध उसने स्वयं युद्ध में भाग लिया और उसके पुत्र कम्पन ने मदुरा के सुल्तानों के विरुद्ध अभियान जारी रखा। कुमार कम्पन का दक्षिणी अभियान सफल रहा। उसने मंत्री गोपन तथा सेनापति सलूबा मंगू की सहायता से राजगंभीर राज्य के संबुवा राय को पराजित किया तथा मदुरा के सुल्तान का वध कर 1364 ई. में कांची के रामेश्वर मंदिर तथा **1371 ई. में श्रीरंगम में रंगनाथस्वामी मंदिर का जीर्णोद्धार किया।** परन्तु दक्षिण पर पूर्ण अधिकार हरिहर II के पुत्र विरुपाक्ष ने किया। मदुरा अभियान की जानकारी हमें कम्पन की पत्नी गंगादेवी द्वारा रचित संस्कृत कविता **'मदुरा विजयम्'** में मिलती है। संभवत: यह अभियान 1365 ई. से 1370 ई. के बीच हुआ।

वस्तुत: बुक्का I जिसे **'राजसिंहासन का अवलम्बक'** कहा गया है, 1346 ई. में ही संयुक्त शासक हो गया था। उसकी राजधानी गुट्टी थी। स्वयं एकमात्र सम्राट के रूप में बुक्का I का शासन 1377 ई. तक चला। 1374 ई. में उसने चीन में एक दूत भेजा, जैसा कि वहां के एक मिंग राजवंश के इतिहास के विवरण में दिया गया है। बुक्का I को बहमनी सुल्तानों मुहम्मद I और मुजाहिद के साथ युद्ध करना पड़ा, जिनमें बहुत बर्बादी हुई 1378 ई. में मुहम्मद II की शांतिप्रिय नीति के काल में ही यह युद्ध रुका।

अध्याय 11

क्षेत्रीय राज्यों का उदय

मुहम्मद बिन तुगलक के शासन काल में दिल्ली सल्तनत का सर्वाधिक विस्तार हुआ। परन्तु उसके शासन काल के अंतिम वर्षों में उसकी अदूरदर्शी नीतियों के कारण सल्तनत का पतन आरंभ हो गया। पतन की इस प्रक्रिया को फिरोजशाह तुगलक ने अपनी अकुशल नीतियों जैसे जागीर प्रथा की पुनर्स्थापना इत्यादि के द्वारा और बढ़ावा दिया। 1398 ई. में तैमूर के आक्रमण ने सल्तनत को एकसूत्र में बांधने वाली शक्ति का अंत कर दिया। इससे अमीरों में आपसी वैमनस्यता तथा षड्यंत्र की प्रवृत्ति को मजबूती मिली, जिसके परिणामस्वरूप राज्य में अव्यवस्था की स्थिति उत्पन्न हो गयी। सैय्यद तथा लोदी शासक इन प्रवृत्तियों को रोकने की स्थिति में नहीं थे। सुल्तान की इन दुर्बलताओं का लाभ उठाकर अनेक प्रांतीय गर्वनरों ने अपने को स्वतंत्र शासक घोषित कर दिया तथा उन्होंने क्षेत्रीय राजवंशों की नींव डाली। 13वीं से 15वीं सदियों के दौरान दो प्रकार के राज्यों का उदय हुआ (1) प्रथम वे राज्य थे जिनका उदय एवं विकास सल्तनत से स्वतंत्र तौर पर हुआ (जैसे असम, ओडिसा एवं कश्मीर के राज्य) और (2) बंगाल, जौनपुर, मालवा और गुजरात जैसे राज्य थे जो अपने अस्तित्व के लिए सल्तनत के ऋणी थे।

बंगाल

दिल्ली के सुल्तानों का बंगाल पर नियंत्रण आरंभ से ही अनिश्चित रहा तथा यह सर्वप्रथम स्वतंत्रता प्राप्त करने वाले राज्यों में से एक था। दिल्ली से इसकी दूरी तथा इसकी अत्यधिक सम्पत्ति से प्राय: इसके शासकों को केंद्रीय शक्ति के विरुद्ध विद्रोह करने का लोभ हो जाता था, जिसके कारण दिल्ली के सुल्तानों को काफी परेशानियों का सामना करना पड़ता था। जैसा कि इल्तुतमिश तथा बलबन के समय में हुआ। बलबन के उत्तराधिकारियों के समय में बंगाल दिल्ली के नियंत्रण से लगभग मुक्त रहा। केवल गयासुद्दीन तुगलक के समय में उस पर पुन: नियंत्रण स्थापित हुआ।

गयासुद्दीन तुगलक के समय में बंगाल का गर्वनर **गयासुद्दीन बहादुर** था, जिसे पराजित कर गयासुद्दीन तुगलक ने प्रांत को तीन प्रशासनिक विभागों में बांट दिया। इन तीनों विभागों की राजधानियां **लखनौती, सतगांव** तथा **सोनारगांव** में स्थापित की गयी। मुहम्मद बिन तुगलक के समय में **कद्र खां** को लखनौती का, **हज्जुद्दीन आजमुलमुल्क** को सतगांव का और **गयासुद्दीन बहादुरशाह** को सोनारगांव की सरकार में बहाल किया गया। इसके अतिरिक्त मुहम्मद बिन तुगलक ने अपने भाई तातार खां, जो बहराम खां के नाम से प्रसिद्ध है, को उसके साथ कर दिया। परन्तु बंगाल के इस प्रशासनिक विभाजन से भी समस्या का समाधान नहीं हुआ।

गयासुद्दीन ने फिर विद्रोह कर दिया तथा **सोनारगांव** एवं **गयासपुर की टकसालों से सिक्के निकाले।** परन्तु जल्दी ही तातार खां ने उन्हें पराजित कर दिया। इस प्रकार शम्सुद्दीन फिरोज का वंश समाप्त हुआ और मुस्लिम बंगाल के तीन मुख्य भाग लखनौती, सतगांव तथा सोनारगांव दिल्ली राज्य में मिला लिये गये। उन पर कद्र खां, मलिक इजुद्दीन माहिया तथा तातार खां ने शासन किया। यह व्यवस्था 1338 तक सफलतापूर्वक चली।

लेकिन 1338ई. में सोनारगांव में तातार खां की मृत्यु के बाद उसके एक निष्ठावान अधिकारी ने विद्रोह कर दिया और सुल्तान फखरुद्दीन मुबारकशाह की उपाधि धारण की। उसने अपने आपको **सोनारगांव** का शासक घोषित कर दिया। किन्तु लखनौती और सतगांव की संयुक्त सेनाओं ने कद्र खां, इजुद्दीन याहिया तथा कड़ा के फिरोज खां के नेतृत्व में फखरुद्दीन को सोनारगांव से भगा दिया। कद्र खां ने सोनारगांव पर अधिकार कर लिया। परन्तु फखरुद्दीन ने पुन: सोनारगांव पर आक्रमण कर उसे अपने अधिकार में ले लिया। लगभग 1339 ई. के पश्चात् उसके दिल्ली से समस्त संबंध समाप्त हो गए।

फखरुद्दीन मुबारक शाह ने 1339 ई. से लेकर 1350 ई. तक सोनारगांव पर शासन किया और चटगांव पर अधिकार कर लिया। शीघ्र ही अलाउद्दीन अली शाह (1339-1345) उत्तर बंगाल में स्वतंत्र हो गया तथा अपनी राजधानी लखनौती से हटाकर पांडुआ ले गया। फखरुद्दीन ने उत्तम कोटि के सिक्के भी जारी किये। उसका उत्तराधिकारी इख्तियारुद्दीन गाजी शाह संभवत: उसका पुत्र था जिसने 1352-53 ई. तक शासन किया। उसके बाद सोनारगांव पर हाजी इलियास शाह ने अधिकार कर लिया।

अली मुबारक ने लखनौती पर **'अलाउद्दीन अली शाह'** की उपाधि से 1339 ई. से 1342 तक शासन किया। उसके बाद उसके उत्तराधिकारी इलियास ने उसकी हत्या कर दी।

सुल्तान शम्सुद्दीन इलियास खां (1342-57): इलियास शाह ने 1342 ई. में लखनौती तथा 1352-53 ई. में सोनारगांव पर अधिकार कर लिया। इसके बाद उसने तिरहुत के दो विरोधी हिन्दू शासकों साखी सिंह तथा कामेश्वर को पराजित कर तिरहुत पर अधिकार कर लिया। उसके बाद **इलियास ने 1346 ई. में नेपाल के शासक जयराजदेव पर आक्रमण किया तथा काठमांडू में स्वयंभूनाथ स्तूप को नष्ट कर दिया।** उसने तिरहुत के पार चंपारण तथा गोरखपुर तक अपनी सत्ता का प्रसार किया और वहां के शासकों ने उसकी सत्ता स्वीकार की। अंत में उसने बनारस तक अपने राज्य का विस्तार किया।

1353 ई. में सुल्तान फिरोजशाह तुगलक ने बंगाल अभियान किया। शाही सेना अवध की ओर से बढ़ती हुई गोरखपुर तथा चंपारण होते हुए बंगाल में प्रवेश किया तथा फिरोजाबाद-पांडुआ पर अधिकार कर लिया।

अध्याय 12

भक्ति एवं सूफी आंदोलन

एक धार्मिक अवधारणा के रूप में भक्ति का अर्थ है- मोक्ष की प्राप्ति के लिए व्यक्तिगत तौर पर पूजे जाने वाले सर्वोच्च ईश्वर के समक्ष भक्तिपूर्ण आत्मसमर्पण। उपनिषदों में इसकी धार्मिक अवधारणा का पूर्ण प्रतिपादन किया गया है। ऐतिहासिक दृष्टि से भक्ति आंदोलन के विकास को दो चरणों में विभाजित किया जा सकता है। पहले चरण में दक्षिण भारत में भक्ति के आरंभिक प्रादुर्भाव से लेकर 13वीं शताब्दी तक के काल को रखा जा सकता है और दूसरे चरण में 13वीं शताब्दी से 16वीं शताब्दी के काल को रख सकते हैं।

दार्शनिक ज्ञानमार्गियों में सबसे प्रख्यात **शंकराचार्य** हुए। उन्होंने बौद्धों के प्रभाव को घटाने तथा वेदों-ब्राह्मणों की महत्ता को स्थापित करने के लिए अपने दार्शनिक चिंतन में **अद्वैतवाद के सिद्धांत** का प्रचार किया। अद्वैतवाद का आधार है कि 'ब्रह्म सत्य है जगत मिथ्या है, आत्मा- परमात्मा ही है, वह उससे पृथक् नहीं है। सांसारिक माया के कारण मानव आत्मा-परमात्मा की एकता को नहीं पहचान पाता है।'

शंकराचार्य ने ज्ञान के साथ-साथ **निर्गुण ब्रह्म** की उपासना का प्रचार किया। साथ ही, शैव उपासना के लिए ज्ञान मार्ग के द्वारा **एकेश्वरवाद** का मार्ग प्रशस्त किया। लेकिन शंकराचार्य ने का यह निर्गुण ज्ञानवाद मानव निराशा का अन्त नहीं कर पाया। परिणामत: वैष्णव संतों द्वारा चार मतों की स्थापना की गयी। 12वीं शताब्दी में **रामानुजाचार्य** द्वारा **विशिष्टाद्वैतवाद**, 13वीं शताब्दी में **मध्वाचार्य** द्वारा **द्वैतवाद**, 13वीं शताब्दी में विष्णुस्वामी द्वारा शुद्धाद्वैतवाद तथा 13वीं शताब्दी में **निम्बार्काचार्य** द्वारा **द्वैताद्वैतवाद**।

इन चारों संप्रदायों ने शंकराचार्य ने अद्वैत और ज्ञान-मार्ग का विरोध किया तथा सगुण भक्ति पर बल दिया। इन सभी ने ब्रह्म और जीव की पूर्ण एकता को अस्वीकार किया तथा इस धारणा का प्रसार किया कि सांसारिक जन्म के बाद जीव का ब्रह्म से एकीकरण समाप्त हो जाता है।

शंकराचार्य द्वारा स्थापित मठ		
मठ	**स्थान**	**देवता**
ज्योतिषपीठ	बद्रीनाथ, उत्तराखंड	विष्णु
गोवर्धन पीठ	पुरी, ओडिशा	बलभद्र व शुभद्रा
शारदा पीठ	द्वारिका, गुजरात	कृष्ण
शृंगेरी पीठ	मैसूर, कर्नाटक	शिव

उत्तर भारत में 14वीं-17वीं शताब्दी के बीच अनेक राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक कारणों से भक्ति आंदोलन का जन्म हुआ।

भक्ति आंदोलन के उदय के कारण

राजनीतिक कारण: तुर्कों के आगमन से पूर्व भारत के सामाजिक-धार्मिक क्षेत्र पर राजपूत-ब्राह्मणों का एकाधिकार था। वे किसी भी प्रकार के गैर-ब्राह्मण आंदोलन के खिलाफ थे। लेकिन तुर्कों के भारत आगमन से इस्लाम का आगमन हुआ और इससे ब्राह्मणों की शक्ति तथा प्रतिष्ठा में कमी आई। इस प्रकार निरीश्वरवादी आंदोलनों के उदय का मार्ग-प्रशस्त हो गया तथा इन आंदोलनों ने जाति विरोधी तथा ब्राह्मण विरोधी सिद्धांत अपनाये। इसके आलावा तुर्कों ने ब्राह्मणों से उनके मंदिरों का धन छीन लिया और उन्हें प्राप्त होने वाला राज्य संरक्षण समाप्त हो गया। इस प्रकार ब्राह्मणों की आर्थिक तथा वैचारिक दोनों स्तरों पर पकड़ कमजोर हो गई परिणामस्वरूप पहला निरीश्वरवादी पंथ **नाथ पंथ** के रूप में उभरा।

सामाजिक-आर्थिक कारण: ऐसा माना जाता है कि मध्यकालीन भारत का भक्ति आंदोलन सामंती शोषण के विरुद्ध आम लोगों के मनोभावों का प्रतिनिधित्व करता है। इसकी पुष्टि कबीर, नानक, चैतन्य तुलसी आदि की सामंत विरोधी कविताओं को उद्धृत कर की जाती है। इसी आधार पर मध्यकालीन **भक्ति आंदोलन की तुलना यूरोप के प्रोटेस्टेंट सुधार आंदोलन** से की जाती है। लेकिन भक्ति संतों की कविताओं में इस बात का संकेत नहीं मिलता है कि उन्होंने सामंती व्यवस्था के विरुद्ध किसानों के वर्ग के हित का समर्थन किया था।

वैष्णव भक्ति संत कट्टर ब्राह्मणवादी परंपरा से इसी अर्थ में अलग थे कि वे भक्ति तथा धार्मिक समानता की बात करते थे। प्रगतिशील एकेश्वरवादी संतों ने ब्राह्मण धर्म की तीखी आलोचना की, लेकिन उन्होंने कभी भी राज्य और शासक वर्ग को हटाने की बात नहीं की।

अत: भारतीय भक्ति आंदोलन की तुलना यूरोपीय प्रोटेस्टेंट सुधार आंदोलन से नहीं की जा सकती है। भक्ति संतों ने केवल इस बात की कोशिश की कि आम जनता की तकलीफों को उजागर किया जाये तथा उनसे जुड़कर रहा जाये।

आर्थिक-सामाजिक परिवर्तन: तुर्कों का शासक वर्ग राजपूतों की तरह गांवों में नहीं, बल्कि शहरों में रहता था। कृषि के अधिशेष का अधिकांश भाग शासक वर्ग के कोष में पहुंच जाता था। इस वर्ग ने उपभोक्ता वस्तुओं, विलासिता के सामान तथा अन्य जरूरत के सामानों की मांग बहुत बढ़ा दी। परिणामस्वरूप शिल्प की नई तकनीकों का वृहत् पैमाने पर विकास हुआ। **13वीं-14वीं शताब्दी में शहरी कारीगरों की संख्या में काफी वृद्धि हुई।**

समृद्धशाली शहरी वर्ग एकेश्वरवादी आंदोलन की ओर आकर्षित हुआ क्योंकि वह धार्मिक समानता की बात करता था, जबकि ब्राह्मणवादी व्यवस्था में उसका स्थान काफी नीचे था। समाज के अनेक वर्गों के समर्थन के कारण ही एकेश्वरवादी आंदोलन इतना लोकप्रिय हो सका। समाज के इन्हीं विभिन्न वर्गों ने उत्तर भारत में हो रहे इस आन्दोलन को सामाजिक आधार प्रदान किया। गुरुनानक के आंदोलन को जाट किसानों का समर्थन मिलने के बाद सिक्ख पंथ एक नये धर्म के रूप में विकसित हुआ।

अध्याय 13

शेरशाह के सुधार

शेरशाह ने अपने पूर्वगामी अफगान शासकों एवं आरंभिक मुगल शासकों की अपेक्षा एक विस्तृत साम्राज्य का निर्माण किया और अधिक शक्तिशाली राजतंत्र का सिद्धांत प्रस्तुत किया, जिसका स्वरूप कल्याणकारी था। शेरशाह की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि प्रशासन के क्षेत्र में है, जहां उसे एक नये युग का अग्रदूत कहा जा सकता है। अपने अल्पकालीन शासन में शेरशाह ने कला और सांस्कृतिक कार्यों को भी प्रोत्साहित किया। इसे इतिहासकारों द्वारा भारत के अफगान शासकों में सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। उसके सुधारों का प्रभाव अकबर के समय प्रकट हुआ और एक विशाल अखिल भारतीय साम्राज्य के निर्माण का मार्ग प्रशस्त हुआ।

प्रशासनिक सुधार

शेरशाह के शासनकाल में महत्वपूर्ण प्रशासनिक सुधार हुए और उसने संपूर्ण राज्य में कानून और व्यवस्था को फिर से स्थापित किया। सत्ता में आने के पश्चात उसके समक्ष सबसे बड़ा प्रश्न नवस्थापित राज्य को सुदृढ़ एवं स्थायी बनाने का था। इसके लिए उसने निम्न दो तरीके अपनाये:

1. उसने नवस्थापित राज्य के लिए प्रजा में निष्ठा एवं समर्पण की भावना का विकास करने का प्रयास किया।
2. एक उच्च कोटि के प्रशासनिक व्यवस्था की स्थापना करना।

शेरशाह के प्रशासनिक सुधार प्रबुद्ध प्रशासन के आदर्श से प्रेरित थे। उसने प्रशासन में राज्य हित और प्रजा का कल्याण दोनों बातें पर ध्यान दिया। प्रशासनिक संगठन की व्यवस्था करने में शेरशाह ने कई पुरानी संस्थाओं को बना रहने दिया। जैसे केंद्रीय प्रशासन को। उसने कई संस्थाओं को पुर्नजीवित किया। जैसे सैन्य व्यवस्था के सुधार। इन दोनों के अलावा शेरशाह ने कुछ नये प्रयोग भी किये जो मुख्यत: (राजस्व) व्यवस्था से संबंधित थे।

केंद्रीय प्रशासन को संगठित करने के क्रम में शेरशाह ने सल्तनत कालीन विशेषताओं को बना रहने दिया। इसके अंतर्गत सुल्तान अथवा शासक सभी शक्तियों का केंद्र बिंदु था और एक निरंकुश शासक के रूप में कार्य करता था। वस्तुत: शेरशाह की निरंकुशता प्रबुद्ध निरंकुशता थी जिसमें जनता के हितों का ध्यान रखा गया था। शेरशाह स्वयं प्रजा की स्थिति का आकलन करने के लिए भ्रमण किया करता था। केंद्रीय प्रशासन के निम्न चार प्रमुख विभाग थे।

1. **दीवाने विजारत:** यह लगान और वित्त संबंधी मामलों का विभाग था जिसका प्रधान वजीर होता था।
2. **दीवाने अर्ज:** यह सैन्य विभाग था जिसका प्रधान आरिज होता था।
3. **दीवाने इंशा:** सचिवालय था जिसका प्रधान दबीर होता था।
4. **दीवाने रिसालत:** यह धार्मिक मामलों का विभाग था जिसका प्रधान सद्र होता था। उसी के अधीन दीवाने कजा (न्याय विभाग) था, जिसका प्रधान काजी होता था।

शेरशाह के प्रांतीय प्रशासन के संबंध में विस्तृत जानकारी उपलब्ध नहीं है। कई सरकारों को मिलाकर सूबे का निर्माण होता था। जिसमें **'हाकिम'** अत्यंत शक्तिशाली और सर्वाधिकार संपन्न होते थे। शेरशाह ने स्थानीय प्रशासन को पहली बार एक सुसंगठित आधार पर समरूपी ढंग से व्यवस्थित किया।

प्रत्येक सरकार में दो प्रमुख अधिकारी होते थे- शिकदर-ए-शिकदरान जो कानून और व्यवस्था की देखरेख करता था तथा मुंसिफे-मुंसिफान जो लगान संबंधी मुकदमों की देखरेख करता था। प्रत्येक परगने में तीन प्रमुख अधिकारी होते थे- **शिकदार** कानून व्यवस्था के लिए, **अमीन** लगान वसूली के लिए तथा **मुंसिफ** मुकदमों की देखभाल करने के लिए।

शेरशाह का प्रशासन

स्तर	विभाग	प्रधान
केंद्रीय प्रशासन	दीवाने वजारत	लगान और वित्त विभाग, प्रधान वजीर होता था।
	दीवाने अर्ज	सैन्य विभाग, प्रधान आरिज होता था।
	दीवाने ईशा	सचिवालय, प्रधान दबीर होताा था।
	दीवाने रिसालत	धार्मिक मामलों का विभाग, प्रधान सद्र होता था।
	दीवाने कजा	न्याय विभाग, प्रधान काजी होता था।
प्रांतीय प्रशासन		प्रांतीय प्रशासन के संबंध में अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं है। हाकिम शक्तिशाली सर्वाधिकार संपन्न होता था।
स्थानीय प्रशासन	सरकार	शिकदरे- शिकदरान कानून व्यवस्था की देखभाल करता था।
		मुंसिफे- मुंसिफान वित्त संबंधी कार्यों को देखता था।
	परगना	शिकदार- कानून व्यवस्था के लिए
		मुंसिफ- मुकदमों की देखभाल
		अमीन- लगान वसूली के लिए
गांव		मुकद्मा गांव का प्रधान होता था।
		पटवारी और कानूनगो लगान वसूली में अमीन की सहायता करते थे।

अध्याय 14

मुगल साम्राज्य (1526-1707 ई.)

मुगल साम्राज्य

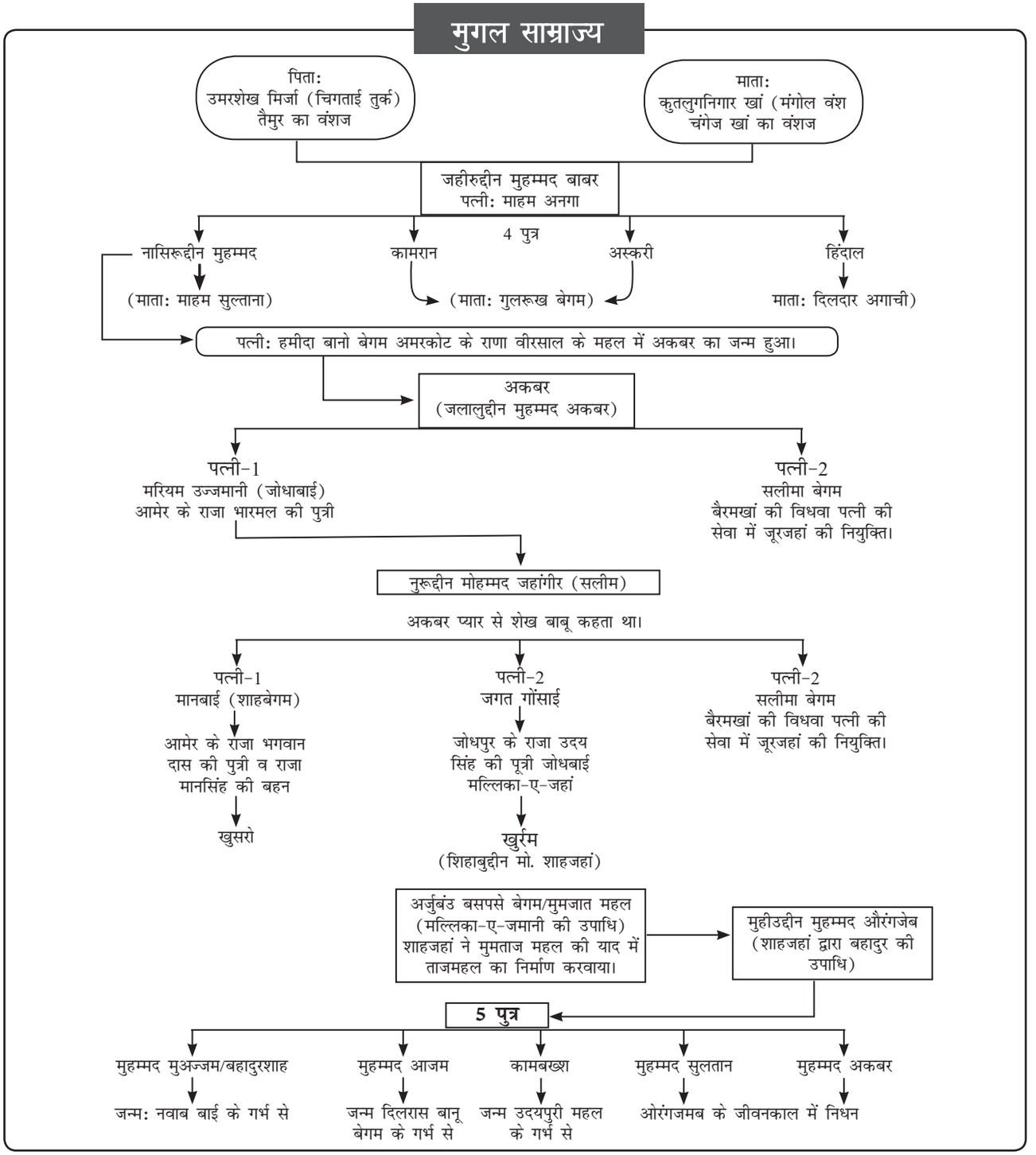

अध्याय 15

मुगलों का राजत्व सिद्धांत

मुगलों का राजत्व सिद्धांत तुर्क-अफगान सुल्तानों की तुलना में भिन्न था। राज्य विषयक मुगल सिद्धांत अनेक स्तरों से होकर विकसित हुआ तथा इसके विभिन्न रचना तत्वों पर अरबी कबीलाई प्रथा **'उम्मत'** और **'मिल्लत'** जैसी इस्लामी संकल्पनाओं का तथा मंगोल, तुर्की, ससनिद, बैंजनाटन और भारतीय परंपराओं का गहरा प्रभाव पड़ा था। मुगलों के पादशाहत (राजत्व) सिद्धांत पूर्णतः इस्लामी नहीं था, बल्कि उसमें मंगोल, तुर्की एवं ईरानी परंपराओं का मिश्रण था।

अबुल फजल ने शासक को समाज में उचित संतुलन बनाये रखने के लिए उत्तरदायी माना। उसने सृष्टि के चार तत्वों की तरह ही समाज के चार तत्वों को निर्धारित किया है। उसके अनुसार यदि समाज के ये चार तत्व अपने निर्धारित कार्य करते रहें और एक दूसरे के कार्य में हस्तक्षेप नहीं करें तो समाज में संतुलन और सुव्यवस्था बनी रहती है। ये चार तत्व थे- योद्धा वर्ग (अग्नि), श्रमिक वर्ग (वायु), बुद्धिजीवी वर्ग (जल) तथा सेवक वर्ग (पृथ्वी) शासक का कार्य इन्हीं चारों वर्गों के कार्यों में संतुलन बनाये रखने का है।

अकबर ने अपनी सेना का पुनर्गठन किया और उसका विस्तृत ब्यौरा तैयार करवाया। सैन्य व्यवस्था के पुनर्गठन में वह स्वयं तत्पर रहता था। मुगल सैन्य व्यवस्था को हम दो वर्गों में वर्गीकत कर सकते हैं। एक थी केंद्रीकृत सेना जो स्वयं सम्राट के देखरेख और अधीनता में कार्य करती थी। दूसरी थी वह सेना जिसकी देखरेख प्रांतीय शासकों और मनसबदारों द्वारा की जाती थी।

शाही घुड़सवार सेना सैन्य व्यवस्था की सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा थी। शाही घुड़सवारों की संख्या तीन लाख से ज्यादा थी। शाही घुड़सवारों की एक ऐसी इकाई थी, जिनकी सीधे नियुक्ति की जाती थी। ये अहदी कहलाते थे तथा सम्राट के अंगरक्षक के रूप में कार्य करते थे। सैनिकों का एक अन्य समूह भी था जो **'दाखिल'** कहलाता था। **'दाखिल'** अहदी की तुलना में निम्नकोटि के सैनिक थे। दाखिल की नियुक्ति सैन्य विभाग द्वारा की जाती थी और ये सेना के निचले पदों पर नियुक्त किये जाते थे। शाही सेना की **'अहदी'** टुकड़ी केवल बादशाह के प्रति उत्तरदायी होती थी। इनकी हाजिरी भी अलग होती थी। अहदी टुकड़ी उन सैनिकों की थी, जो उच्च वंश से संबंधित थे, किंतु जिनके पास इतनी सुविधाएं नहीं थी कि अपनी टुकड़ी का निर्माण कर सकें। अहदी सैन्य टुकड़ी में वे लोग भी थे जिन्होंने सम्राट को व्यक्गित रूप से प्रभावित किया था। इन्हें आठ से दस घोड़े रखने का अधिकार था और लगभग 800 रुपये प्रतिमास वेतन भी मिलताथा। इन सैनिकों की तुलना मध्ययुगीन यूरोप के **'नाइट्स'** से की जाती है।

घुड़सवारों के अतिरिक्त सेना में तीरंदाज, बंदूकची, हाथी आदि भी शामिल थे। परंतु अकबर ने एक नौसेना का गठन नहीं किया जो साम्राज्य की कमजोरी रही।

मुगल सेना व मनसबदारी प्रणाली

'मनसब' फारसी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ पद के रूप में लिया जाता है। मुगलों के शासनकाल में विकसित मनसबदारी व्यवस्था एक विशिष्टि व अनूठी प्रणाली थी। इस व्यवस्था का विकास अकबर द्वारा किया गया था। मनसबदारी व्यवस्था का विकास किस समय हुआ, यह एक विवाद का विषय है। एक महत्वपूर्ण साक्ष्य के अनुसार इस व्यवस्था का आरंभ अकबर द्वारा अपने शासन काल के 19वें वर्ष (1576) में किया गया। अकबर के उत्तराधिकारियों द्वारा किये गये कुछ संशोधनों के साथ यह व्यवस्था मुगल साम्राज्य की सैन्य व नागरिक सेवाओं का आधार बनी रही।

मनसबदारी व्यवस्था **दशमलव प्रणाली** मंगोलों की सैन्य व्यवस्था पर आधारित थी, इसका उद्भव संभवतः चंगेज खां द्वारा किया गया था। मनसबदारी व्यवस्था की कुछ छाप दिल्ली सल्तनत के सैनिक संगठन पर भी दिखायी पड़ती है और यह मुगलों की सैन्य व्यवस्था का आधार बनी।

बाबर के नेतृत्व में मुगलों द्वारा उत्तर भारत के विजय अभियान से अकबर के सत्तासीन होने तक मुगलों को प्रशासनिक संस्थाओं के पुनर्व्यवस्था और सुदृढ़ीकरण का अवसर नहीं मिला। हुमायूं राजनीतिक समस्याओं में उलझे रहने के कारण इस ओर ध्यान देने में असमर्थ रहा। अकबर ने ही अपने राजपद और साम्राज्य को सुदृढ़ और सुरक्षित करने के लिए इस व्यवस्था को विकसित किया।

मनसबदारी व्यवस्था का स्वरूपः अकबर ने मुगल सेना को जिस मनसबदारी प्रणाली के तहत सुगठित किया, उसमें प्रत्येक सरदार और दूसरे सैन्य पदाधिकारियों को एक पद अर्थात मनसब प्रदान किया जाता था। **मनसब 10 से लेकर 10000 के बीच होता था तथा इन्हें 60 वर्गों में बांटा गया था**, जिन्हें **'जात'** कहा जाता था। प्रारंभ में केवल जात मनसब की ही व्यवस्था थी। लेकिन सैन्य व्यवस्थाओं को आगे और स्तरों में बांटने के लिए **'सवार'** पद बनाया गया। इस प्रकार मनसब को जात और सवार नामक दो वर्गों में बांटा गया था। **'जात'** का अर्थ है व्यक्तिगत। इससे व्यक्ति का पद स्थान तथा वेतन निर्धारित होता था।

सवार से घुड़सवारों की संख्या का बोध होता था जो मनसबदार अपने अधीन रखता था। जिस व्यक्ति को अपने जात पद के अनुपात में सवार रखने का अधिकार होता था वह प्रथम श्रेणी में आता था। यदि सवारों की संख्या आधी या आधी से अधिक होती थी, तो वह दूसरी श्रेणी में आता था, और उससे नीचे तीसरी श्रेणी होती थी।

मनसबदारी व्यवस्था के अधीन सवारों की भर्ती एक निर्धारित उच्च स्तरीय मानदंड के आधार पर की जाती थी।

अध्याय 16

मुगल काल में आर्थिक और सामाजिक जीवन व उत्तर मुगल एवं प्रान्तीय राज्य

मध्यकालीन भारत में सामाजिक और आर्थिक जीवन में एक निरंतरता बनी रही। सल्तनत कालीन सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों और मुगल कालीन सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों में कोई मौलिक अंतर नहीं था। फिर भी मुगलकाल में महत्वपूर्ण सामाजिक-आर्थिक प्रगति हुई जिसके संबंध में हमें कई स्रोतों से जानकारी मिलती है। 17वीं शताब्दी के अंत तक मुगल साम्राज्य अपने विस्तार के चरमोत्कर्ष पर पहुंच गया था। इस काल में कई राजनैतिक और प्रशासनिक समस्याओं का सामना करना पड़ा। फिर भी सामाजिक और आर्थिक जीवन में महत्वपूर्ण प्रगति हुई।

सामाजिक जीवनः मुगलकालीन सामाजिक संरचना सल्तनत काल से बहुत भिन्न नहीं थी। सिवाय इसके कि सिख एक महत्वपूर्ण संप्रदाय के रूप में उभरे तथा ईसाइयों की संख्या में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई। हिंदू समाज में पूर्ववत जाति पर आधारित विभाजन बने रहे, हालांकि इसका विरोध करने वाले संतों का भी पदार्पण हुआ। मुस्लिम समाज का स्वरूप भी पूर्ववत रहा। इनमें ईरानियों की संख्या और प्रभाव में उल्लेखनीय वृद्धि हुई तथा हब्शियों और अरबों का महत्व पहले की अपेक्षा कम हो गया।

महिलाओं की स्थितिः समाज में महिलाओं की स्थिति पहले की अपेक्षा कुछ सुधरी। मुगल काल के अनेक विदुषी और प्रभावशाली महिलाओं की चर्चा मिलती है।

जहांआरा, नूरजहां, गुलबदन बेगम, चांदबीबी, दुर्गावती, ताराबाई आदि महत्वपूर्ण महिलाएं थीं। फिर भी कई प्रथाएं ऐसी थीं जिनके कारण महिलाओं को काफी असुविधा का सामना करना पड़ता था। जैसे पर्दाप्रथा, बहुविवाह, बाल विवाह, सतीप्रथा, देहज प्रथा आदि। अकबर द्वारा सामाजिक सुधार के प्रयत्न भी किये गए पर असफल हुए। मुगलकाल में शिक्षा के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन आया। अब धार्मिकेत्तर विषयों की ओर भी ध्यान दिया जाने लगा।

भाषाः प्रशासनिक भाषा होने के कारण फारसी का काफी विकास हुआ। परंपरागत शिक्षण का कार्य भी साथ-साथ चलता रहा। हिंदू और मुस्लिम समाज के बीच संपर्क से एक मिली-जुली परंपरा का आरंभ हुआ। रहन-सहन के ढंग, खान-पान, वेशभूषा, त्यौहार एवं उत्सव आदि में एक मिली जुली परंपरा विकसित हुई। वस्तुतः यह समन्वित परंपरा ही मुगल काल के समाज की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

जीवन स्तर या रहन-सहन का ढंगः बहुत से यूरोपीय व्यापारियों ने, जो इस काल में भारत आये थे, एक ओर तो समाज की संपन्नता और समृद्धि तथा शासक वर्ग के शानो-शौकत के जीवन पर बल दिया है और दूसरी ओर जन साधारण जैसे किसानों, दस्तकारों और श्रमिकों की गरीबी भरे जीवन का चित्रण किया है। मुगल साम्राज्य के संस्थापक बाबर ने लिखा है कि 'यहां किसान तथा निम्न वर्ग के लोग करीब-करीब नंगे रहते हैं।' इसके अलावा बाबर ने लंगोट और साड़ी का भी वर्णन किया है जो क्रमशः पुरुषों और स्त्रियों द्वारा उस काल में सामान्य रूप से पहना जाता था।

खाद्य पदार्थः खाद्य पदार्थों में चावल, बाजरा और दाल प्रमुख थे। बंगाल तथा तटवर्ती प्रदेशों में मुख्य खाद्य पदार्थ मछली तथा प्रायद्वीप के दक्षिण में मांस था। उत्तर भारत में गेहूं तथा मोटे अनाज के अलावा दाल और हरी सब्जी का प्रचलन अधिक था। खाद्यान्नों की अपेक्षा घी, तेल अधिक सस्ता था और गरीबों के भोजन का मुख्य हिस्सा था। परंतु चीनी तथा नमक थोड़े महंगे होते थे। अधिक चरागाह के कारण पशुधन भी काफी उपलब्ध था जिससे दुग्ध तथा दुग्ध पदार्थ अधिक मात्रा में उपलब्ध था।

जीवन स्तरः जीवन स्तर अंततः आय और वेतनों पर ही निर्भर करता था। किसानों की आय का अनुमान लगाना कठिन है, क्योंकि गांव में मुद्रा का प्रचलन कम था। गांव के दस्तकारों को भी उनका पारिश्रमिक परंपरागत पदार्थों के रूप में मिलता था। औसत मिल्कियत में काफी असमानता थी। भूमिहीन किसान और श्रमिक प्रायः मनुष्यों के उस वर्ग से संबंध रखते थे, जिन्हें **'अछूत' या 'कमीन'** समझा जाता था।

भूमिहीन किसानों को **पहिकाश्त** कहा जाता था तथा अपनी भूमि पर खेती करने वाले किसानों को **खुदकाश्त** कहा जाता था। खुदकाश्त को मूल निवासी का दर्जा प्राप्त था तथा ग्रामीण समाज पर उनका काफी प्रभाव होता था, फिर भी जमींदारों द्वारा उनका शोषण होता था।

17वीं शताब्दी के आरंभ में भारत की आबादी लगभग 12.5 करोड़ थी, अतः खेती योग्य भूमि बड़ी मात्रा में उपलब्ध रही होगी। एशिया और अफ्रीका के दशों के विपरीत भारत की अर्थव्यवस्था काफी हद तक बहुमुखी थी, क्योंकि यहां कई तरह की फसलें (खाद्य फसल एवं नकदी फसल) होती थी।

फसलः 17वीं शताब्दी में दो नयी फसलों अर्थात **तंबाकू और ज्वार** की खेती का प्रचलन भी भारत में शुरू हुआ। बंगाल में रेशम और टस्सर की पैदावार में इतनी वृद्धि हुई कि चीन से रेशम का आयात लगभग बंद हो गया। **18वीं सदी में आलू और लाल मिर्च** की पैदावार भी प्रारंभ हो गयी। भारत इस काल में पड़ोस के कुछ देशों को **चावल और चीनी** का निर्यात भी करता था। इन सबके अलावा सूती वस्त्र उद्योग आदि के लिए कच्चे मालों की आपूर्ति गांवों से आसानी से हो जाती थी।

कुल मिलाकर निष्कर्ष स्वरूप हम कह सकते हैं कि यद्यपि किसानों का जीवन कठिन था तथापि उसके पास खाने और अपनी साधारण आवश्यकताओं को पूरा करने के पर्याप्त साधन होते थे, किंतु भूमिहीन किसानों, दस्तकारों तथा निचली श्रेणी में काम करने वालों की दशा अधिक दयनीय रही होगी। जहां तक शहरों का सवाल है, वहां

अध्याय 17

शिवाजी एवं मराठा शक्ति का अभ्युदय

17वीं शताब्दी में मराठों का दक्षिण की राजनीति में उत्थान, उत्तर-मध्यकालीन भारतीय इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना है। 17वीं सदी के मध्य के बाद मराठों ने भारत के पश्चिमी एवं दक्षिणी-पश्चिमी भाग में अपना राज्य स्थापित किया। मराठों की महत्वपूर्ण भूमिका इस तथ्य में निहित है कि उन्होंने अपने उदय के बाद से 18वीं सदी के अंत तक भारतीय राजनीति को प्रभावित करते रहे तथा उत्तरवर्ती मुगल शासकों के काल में वे मुगलों के बाद भारत की सबसे महत्वपूर्ण शक्ति बने रहे। अपने उदय के बाद मराठे न केवल दक्षिण की राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे थे, बल्कि मुगलों के लिए भी वे एक भारी समस्या बने हुए थे। खासतौर से औरंगजेब के काल में मुगलों को मराठों की शक्ति से लगातार जूझना पड़ा। इसका कुप्रभाव मुगलों के स्थायित्व पर भी पड़ा।

मराठों के उदय के कारणों की व्याख्या विभिन्न इतिहासकारों ने विभिन्न ढंग से की है। ग्रांट डफ इसे सहयाद्री के जंगलों में विद्रोही गतिविधियों का परिणाम मानते हैं। जादूनाथ सरकार तथा जी.एस. सरदेसाई इसे औरंगजेब की सांप्रदायिक नीतियों के खिलाफ हिंदू प्रतिक्रिया के रूप में देखते हैं। आंद्रे विंक का मानना है कि दक्षिणी राज्यों पर बढ़ते मुगल दबाव के परिणाम- स्वरूप मराठों का उदय हुआ। एम.जी. रानाडे इसे विदेशी शासन के खिलाफ राष्ट्रीय संघर्ष की परिणति मानते हैं।

सांस्कृतिक भूमिका: मराठों के उदय के लिए बौद्धिक और वैचारिक ढांचा भक्ति आंदोलन से प्राप्त हुआ जो महाराष्ट्र धर्म के रूप में रूपायित हुआ। इससे मराठों को एक सांस्कृतिक पहचान बनाने में मदद मिली। भक्ति संतों के समतावादी सिद्धांत से इन्हें बल मिला। इसके अतिरिक्त भाषा ने भी मराठों के बीच एकता को बढ़ावा दिया। इन्हें एक सांस्कृतिक सूत्र में बांधने में भाषायी तत्व का योगदान भी कम नहीं था। भक्ति संतों ने मराठी भाषा को अपने उपदेशों एवं काव्यों में स्थान देकर मराठी भाषा के महत्व को बढ़ाया।

12वीं-13वीं सदी से 17वीं सदी के बीच ज्ञानदेव, तुकाराम एवं रामदास आदि संतों का उदय हुआ। इन्होंने समाज में ऊंच-नीच के भेद-भाव का विरोध किया, छुआछूत को अस्वीकार किया और इस प्रकार मराठों के बीच एकता और सामाजिक जीवन की एकरुपता को बढ़ावा दिया। सिंधिया जैसे साधारण मूल के मराठों का सामाजिक स्तर पर आगे बढ़ना इस आंदोलन की सफलता का प्रमाण है।

दक्षिण भारतीय राज्यों की स्थानीय स्वायत्त सभाओं की परंपरा मराठा क्षेत्रों में भी प्रचिलत थी। इस स्वायत्त पंचायती सभाओं ने मराठा क्षेत्र में स्थानीय स्वायत्तता की भावना को प्रबल बनाने में योगदान दिया।

सामाजिक भूमिका: मराठों के उदय में सामाजिक तत्वों का योगदान भी महत्वपूर्ण रहा। मराठा समाज के विभाजन का आधार वतन था। यह शब्द राजकीय अनुदान के लिए प्रयुक्त किया जाता था तथा इसका अर्थ जीविका का स्रोत था। वतन प्राप्त करने वाला वतनदार समाज कुलीन वर्ग था।

यह वर्ग मराठा कृषक वर्ग को अपने अधीन समझता था तथा उसका शोषण करता था। केंद्रीय प्रशासन की कमजोरी का फायदा उठाकर इस वर्ग ने धन संपत्ति तथा सैनिक शक्ति बढ़ा ली थी। मुगल उत्पीड़न ने इस वर्ग को विद्रोही प्रकृति का बना दिया। कालांतर में यह वर्ग भी राजनीतिक महत्वाकांक्षा से प्रेरित हो गया। मराठों के उत्थान में इस वतनदार वर्ग की राजनीतिक महत्वाकांक्षा भी उत्तरदायी थी।

राजनीतिक भूमिका: वस्तुत: मराठों का उदय केंद्रीय मुगल साम्राज्य के विरुद्ध एक क्षेत्रीय प्रतिक्रिया थी। इसमें उस क्षेत्र की बदलती हुई राजनीतिक परिस्थितियों का भी काफी योगदान रहा। आरंभ में मराठों का उत्कर्ष दक्षिणी रियासतों के पतन से संभव हुआ और कालांतार में उनका विस्तार मुगल साम्राज्य की कमजोरियों के कारण संभव हुआ। 17वीं सदी के मध्य तक दक्षिण भारत में मुगल सत्ता का विस्तार निर्णायक चरण में पहुंच चुका था। मुगल आक्रमण के कारण कमजोर पड़ चुके बीजापुर-गोलकुंडा राज्य मराठों पर अंकुश लगाये रखने में असमर्थ थे। मराठावाड़ा क्षेत्र में स्थानीय भूमिपति **देशक** कहलाते थे। ये देशक तुर्क अफगान शासन के पहले से स्थापित थे।

शिवाजी का अभ्युदय: 17वीं सदी से ही मराठे बीजापुर, अहमदनगर तथा गोलकुंडा राज्यों की सेना में कार्यरत थे। उनके राज्यों के पहाड़ी किलों को मराठे ही नियंत्रित करते थे। इन मराठों को राजा, नायक तथा राव की उपाधि से सम्मानित किया जाता था। बीजापुर के शासक इब्राहिम आदिल शाह ने मराठों को बारगीर के रूप में नियुक्त किया तथा उनका उपयोग वह अक्सर अहमदनगर के निजामशाही शासकों के विरुद्ध किया करता था। उसने अपने लेखा विभाग में भी मराठा ब्राह्मणों की नियुक्ति की थी। उस काल के प्रसिद्ध नायकों में नायक चंदर राव मोरे तथा उसका पुत्र यशवंत राव (जावली का राजा), फुल्टन राव आदि थे।

शिवाजी के पिता का नाम **शाह जी भोंसले,** दादा का नाम **मालोजी** तथा मां का नाम **जीजाबाई** था। वे अपने पिता के सबसे छोटे पुत्र थे।

शिवाजी भोंसले परिवार से संबंधित थे। उनके पूर्वज पहले अहमदनगर शासकों के अधीन पटेल थे। मालोजी ने 1577 ई. में अपना जीवन अहमदनगर के मुर्तजा निजामशाह के अधीन बारगीर के रूप में शुरू की थी। निजामशाही शासकों ने मालोजी को मालोजी राजा भोंसले की उपाधि दी और पूना तथा सोपा की जागीर प्रदान की।

शाहजी भोंसले ने अपना राजनीतिक जीवन अहमदनगर के प्रधानमंत्री मलिक अंबर के अधीन आरंभ किया। शाहजी को आजम खां के जरिए मुगलों की सेवा में जाने का अवसर मिला और 1630 ई. में शाहजहां ने शाहजी को 6000 जात और 5000 सवार का ओहदा प्रदान किया।

अध्याय 18

दक्षिण भारत के राजवंश

विंध्य के दक्षिण में पड़ने वाले भारत के भाग को लोग दक्षिण भारत या **दक्कन** कहते हैं। यह विभाजन प्राचीन समय से ही चला आ रहा है, जब विंध्य के दक्षिण में पड़ने वाला क्षेत्र दक्षिणापथ या दक्षिणी क्षेत्र कहलाता था। सात वाहनों के पतन के बाद दक्कन पर शक्तिशाली राज्य का शासन समाप्त हो गया तथा कई राज्य अलग-अलग क्षेत्रों में सतवाहनों के उत्तराधिकारियों के रुप में उभर कर सामने आए।

संगम काल के अंत से छठवीं शताब्दी के मध्य तक **तमिलनाडु और केरल पर कालभ्रों का** अधिपत्य था। कालभ्रों के विषय में अधिक जानकारी नहीं मिलती है, लेकिन कुछ प्राप्त जानकारी के अनुसार कालभ्र ब्राह्मणों के संस्थाओं के खिलाफ थे और बौद्ध एवं जैन धर्म के समर्थक थे।

कालभ्रों ने संगम युग के चेर, चोल और पांड्यों के राज को खत्म कर दिया। ऐसा लगता है कि कालभ्रों ने उत्तर कर्नाटक में आने वाली चालुक्य राज्य की सीमाओं तक अपना विस्तार कर लिया था परंतु छठवीं शताब्दी के मध्य से, दक्कन और दक्षिण भारत की राजनीति पर तीन शक्तियों की गतिविधियों का बोलबाला रहा, जिनमें बादामी के चालुक्य, कांची के पल्लव और मदुरा के पांड्य थे।

बादामी के चालुक्य वंश

चालुक्य वंश की मूल शाखा जिसने इस साम्राज्य की नींव डाली, **बादामी अथवा वातापी** (बीजापुर जिला) के चालुक्यों की थी। बादामी के चालुक्यों को प्रारम्भिक पश्चिमी चालुक्य भी पुकारा गया है। उनकी एक शाखा वेंगी अथवा विषपुर के पूर्वी चालुक्य थे, जिन्होंने सातवीं सदी के आरम्भ में अपने स्वतन्त्र राज्य को स्थापित किया। ये अन्त में राष्ट्रकूट शासकों के अधीन हो गये। इनकी एक अन्य शाखा **कल्याणी** के चालुक्य थे जिन्हें बाद में पश्चिमी चालुक्य भी पुकारा गया और जिन्होंने 10वीं सदी के उत्तरार्द्ध में राष्ट्रकूट शासकों से अपने वंश के राज्य को पुनः छीन लिया और एक बार फिर चालुक्यों की कीर्ति को स्थापित किया।

छठीं शताब्दी के मध्य से लेकर **आठवीं शताब्दी** के मध्य तक दक्षिणी भारत में चालुक्य वंश की जिस शाखा का आधिपत्य रहा, उसका उत्थान स्थल **बादामी** या वातापी होने के कारण उसे बादामी या **वातापी का चालुक्य या पश्चिमी चालुक्य** कहा गया है। उनका उद्‌गम स्थल वर्तमान कर्नाटक के बीजापुर जिले में स्थित बादामी या वातापी नामक स्थान था।

चालुक्य के ऐतिहासिक स्रोत

अभिलेखीय स्त्रोतः बादामी के चालुक्यों के इतिहास निर्माण के प्रमुख स्त्रोत हैं रविकीर्ति द्वारा दक्षिणी ब्राह्मी लिपि तथा संस्कृत भाषा में लिखित पुलकेशिन द्वितीय का ऐहोल अभिलेख, बादामी शिलालेख, महाकूट का लेख, हैदराबाद दानपत्र अभिलेख इत्यादि।

ऐहोल अभिलेख से हर्षवर्धन के साथ पुलकेशिन द्वितीय के युद्ध पर प्रकाश पड़ता है। बादामी शिलालेख से पुलकेशिन प्रथम तथा महाकूट लेख से कीर्तिवर्मन प्रथम तथा हैदराबाद लेख से पुलकेशिन द्वितीय के संबंध में जानकारी मिलती है। इसके अतिरिक्त चीनी यात्री **ह्वेनसांग** के विवरणों से भी चालुक्य वंश के इतिहास पर प्रकाश पड़ता है।

राजनीतिक इतिहास

जयसिंह चालुक्य वंश का संस्थापक था। वह बहुत ही सूझ-बूझ वाला एवं **सामारिक प्रवृत्ति** का शासक था। संभवतः उसने राष्ट्रकूटों से युद्ध कर उनसे महाराष्ट्र छीना था।

जयसिंह के पश्चात् उसका पुत्र **रणराज राजा** हुआ। परन्तु वह अत्यन्त अयोग्य राजा सिद्ध हुआ। उसके शासन काल में कोई उल्लेखनीय घटना देखने को नहीं मिलती है।

पुलकेशिन प्रथम

पुलकेशिन प्रथम बादामी के चालुक्य वंश का **वास्तविक संस्थापक** था। वह एक प्रतापी राजा था। संभवतः आर्रंभिक चालुक्य शासक कदम्ब शासकों के अधीनस्थ सामंत थे।

पुलकेशिन प्रथम ने वातापी को अपना राजधानी बनाया। ऐहोल अभिलेख में उसके वातापी के ऊपर अधिकार तथा अश्वमेध यज्ञ करने का उल्लेख मिलता है। उसने **'सत्याश्रय' तथा 'रणविक्रम', 'पृथ्वी वल्लभ'** जैसी उपाधियां धारण कीं। उसने अश्वमेध, वाजपेय आदि वैदिक यज्ञों का अनुष्ठान किया।

कीर्तिवर्मन प्रथम

इसके शासन काल में बनवासी के कदम्ब, कोंकण के मौर्य तथा बल्लरी-कर्नूर के नलवंशी शासकों को पराजित कर उन्हें अपने साम्राज्य में शामिल कर लिया गया। उसका समकालीन कदम्ब शासक संभवतः अजयवर्मा था।

मंगलेश के महाकूट अभिलेख के अनुसार कीर्तिवर्मन ने बंग, अंग, कलिंग, मगध, भद्रक, केरल, गंग, मूलक, पांड्य, चोल, वैजयंती आदि शासकों को भी पराजित किया था। कीर्तिवर्मन प्रथम को वातापी का प्रथम निर्माता कहा जाता है।

मंगलेश

मंगलेश ने सर्वप्रथम कलचुरि शासक बुद्धिराज पर आक्रमण कर उसे पराजित कर दिया। उसके बाद मंगलेश ने कोंकण के मौर्यों की राजधानी रेवती द्वीप पर आक्रमण किया।